संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी

मूल्य : रु. ६/-
अंक : १९४
फरवरी २००९

महाशिवरात्रि : २३ फरवरी
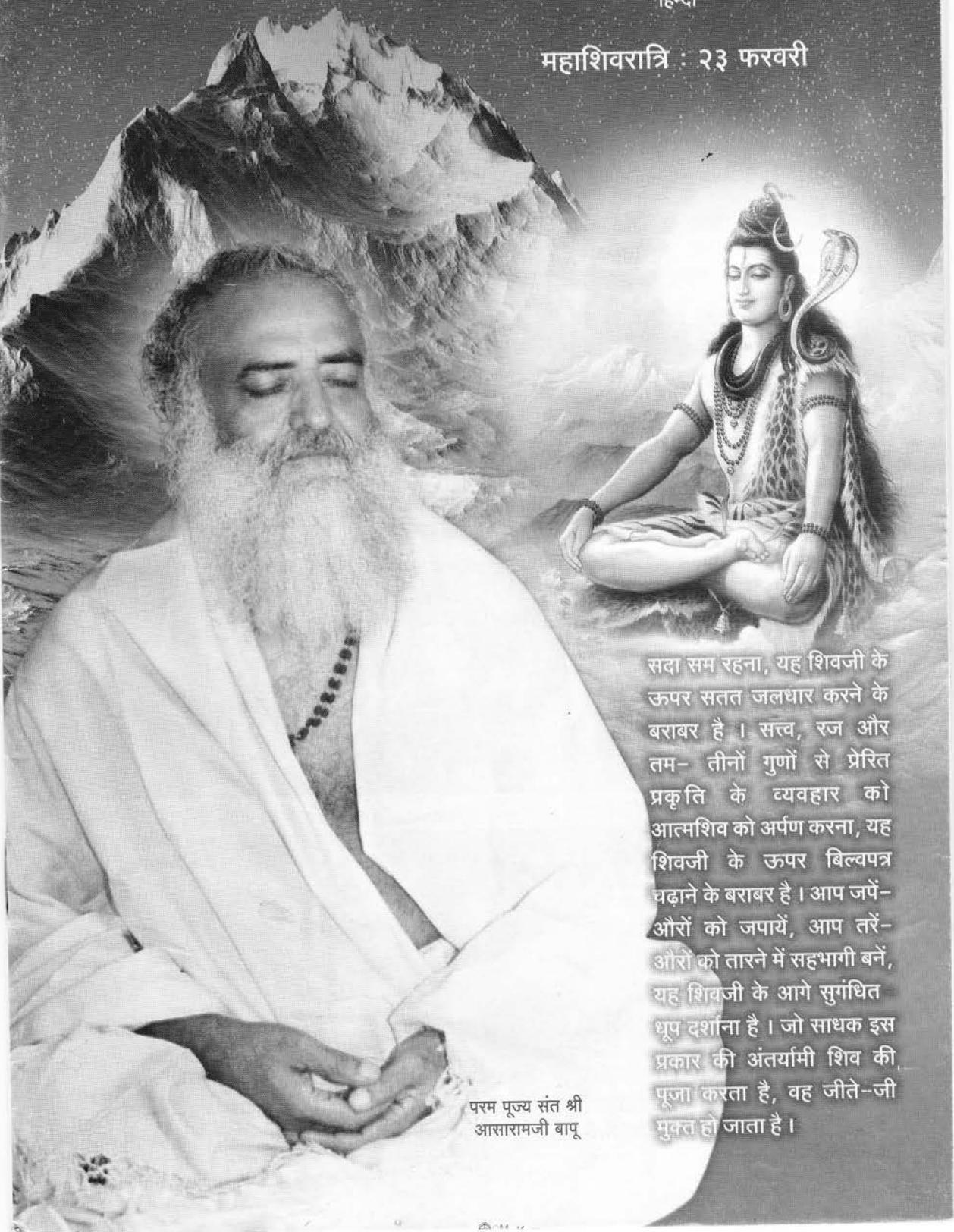
सदा सम रहना, यह शिवजी के ऊपर सतत जलधार करने के बराबर है । सत्त्व, रज और तम- तीनों गुणों से प्रेरित प्रकृति के व्यवहार को आत्मशिव को अर्पण करना, यह शिवजी के ऊपर बिल्वपत्र चढ़ाने के बराबर है । आप जपें- औरों को जपायें, आप तरें- औरों को तारने में सहभागी बनें, यह शिवजी के आगे सुगंधित धूप दर्शाना है । जो साधक इस प्रकार की अंतर्यामी शिव की पूजा करता है, वह जीते-जी मुक्त हो जाता है ।

परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू

दिव्य प्रेरणा-प्रकाश ज्ञान प्रतियोगिता

देशभर में आयोजित इस प्रतियोगिता के क्षेत्रीय स्तर का आयोजन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। इस प्रतियोगिता में ४,४२,३०८ विद्यार्थियों ने भाग लिया।

स्वामी विवेकानंदनगर, सुलतानपुर (उ.प्र.)

ऋषिकेश, जि. देहरादून (उत्तराखंड)
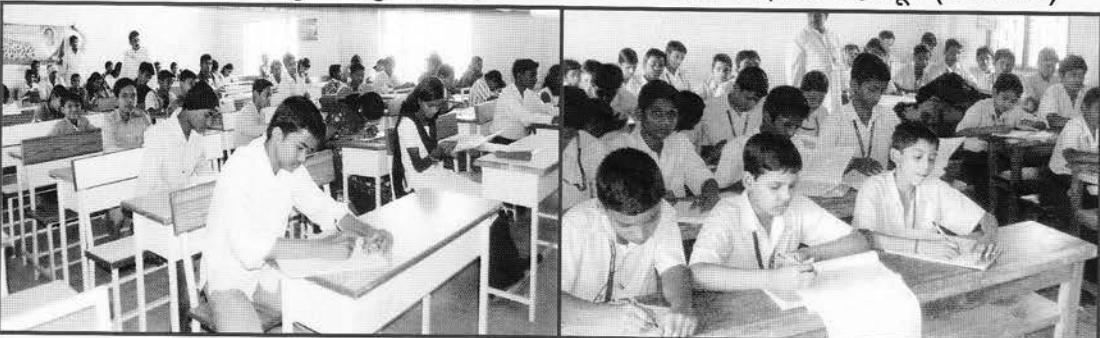
वर्धा (महा.)

भुवनेश्वर (उड़ीसा)
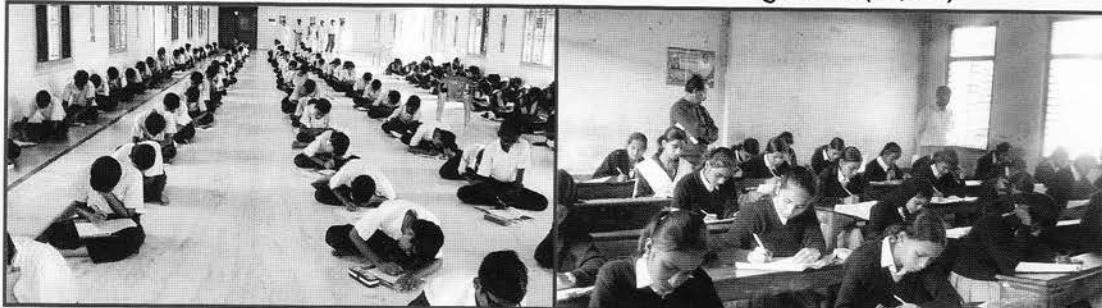
ब्रह्मपुर, जि. गंजाम (उड़ीसा)

सिलीगुड़ी, जि. दार्जिलिंग (प. बंगाल)
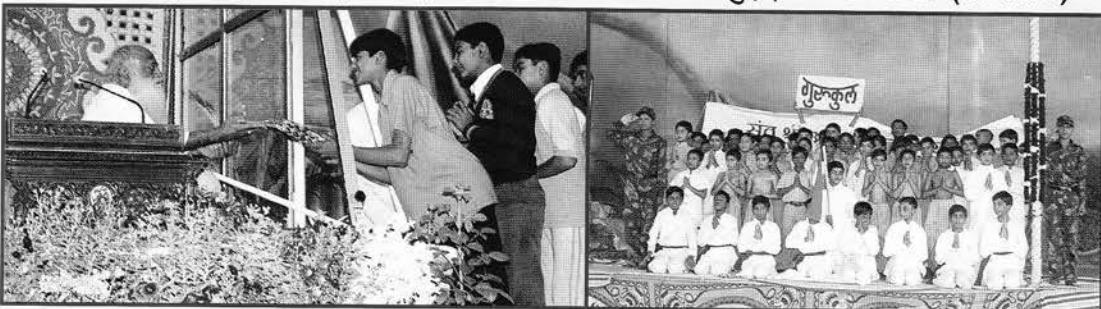
आश्रम के गुरुकुलों के विद्यार्थियों की 'दिव्य प्रेरणा-प्रकाश' पुस्तक पर आधारित लिखित व वक्तृत्व स्पर्धा का पुरस्कार-वितरण उत्तरायण शिविर में पूज्य बापूजी के करकमलों से सम्पन्न हुआ तथा गुरुकुलों के विद्यार्थियों ने सामूहिक रूप से सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किया।

ऋषि प्रसाद

मासिक पत्रिका

हिन्दी, गुजराती, मराठी, उड़िया, तेलगू, कन्नड़ व अंग्रेजी भाषाओं में प्रकाशित

वर्ष : १९ अंक : १९४
फरवरी २००९ मूल्य : रु. ६-००
माघ-फाल्गुन वि.सं.२०६५

सदस्यता शुल्क (डाक खर्च सहित)

भारत में

(१) वार्षिक : रु. ६०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक : रु. २२५/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-

अन्य देशों में

(१) वार्षिक : US $ 20
(२) द्विवार्षिक : US $ 40
(३) पंचवार्षिक : US $ 80

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	द्विवार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	७०	१३५	३२५
अन्य देशों में	US $ 20	US $ 40	US $ 80

कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नकद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट (अमदावाद में देय) द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

संपर्क पता : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, मोटेरा, अहमदाबाद, पो. साबरमती-३८०००५ (गुजरात)।
ऋषि प्रसाद से संबंधित कार्य के लिए फोन नं. : (०७९) ३९८७७७१४, ६६११५७१४.
अन्य जानकारी हेतु : (०७९) २७५०५०१०-११, ३९८७७७८८, ६६११५५००.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई पो. वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, मोटेरा, अहमदाबाद, पो. साबरमती-३८०००५. गुजरात
मुद्रण स्थल : विनय प्रिंटिंग प्रेस, ''सुदर्शन'', मिठाखली अंडरब्रीज के पास, नवरंगपुरा, अहमदाबाद- ३८९०००९. (गुजरात)
सम्पादक : श्री कौशिकभाई पो. वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा, श्रीनिवास
Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रमणिका

विभिन्न टीवी चैनलों पर पूज्य बापूजी का सत्संग

संस्कार — रोज सुबह ७-५० बजे (सोम से शुक्र)

रोज सुबह ५-४० बजे

IBN7 — रोज सुबह ६.१० बजे

रोज सुबह ७-०० बजे

आत्मशिव में आराम पाने का पर्व : महाशिवरात्रि

(महाशिवरात्रि : २३ फरवरी)

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

फाल्गुन (गुजरात-महाराष्ट्र में माघ) कृष्ण चतुर्दशी को 'महाशिवरात्रि' के रूप में मनाया जाता है। यह तपस्या, संयम, साधना बढ़ाने का पर्व है, सादगी व सरलता से बिताने का दिन है, आत्मशिव में तृप्त रहने का, मौन रखने का दिन है।

महाशिवरात्रि देह से परे आत्मा में, सत्यस्वरूप शिवतत्त्व में आराम पाने का पर्व है। भाँग पीकर खोपड़ी खाली करने का दिन नहीं है लेकिन रामनाम का अमृत पीकर हृदय पावन करने का दिन है। संयम करके तुम अपने-आपमें तृप्त होने के रास्ते चल पड़ो, उसीका नाम है महाशिवरात्रि पर्व।

महाशिवरात्रि जागरण, साधना, भजन करने की रात्रि है। 'शिव' का तात्पर्य है 'कल्याण' अर्थात् यह रात्रि बड़ी कल्याणकारी है। इस रात्रि में किया जानेवाला जागरण, व्रत-उपवास, साधन-भजन, अर्थसहित शांत जप-ध्यान अत्यंत फलदायी माना जाता है। 'स्कंद पुराण' के ब्रह्मोत्तर खंड में आता है : 'शिवरात्रि का उपवास अत्यंत दुर्लभ है। उसमें भी जागरण करना तो मनुष्यों के लिए और दुर्लभ है। लोक में ब्रह्मा आदि देवता और वसिष्ठ आदि मुनि इस चतुर्दशी की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। इस दिन यदि किसीने उपवास किया तो उसे सौ यज्ञों से अधिक पुण्य होता है।'

'जागरण' का मतलब है जागना। जागना अर्थात् अनुकूलता-प्रतिकूलता में न बहना, बदलनेवाले शरीर-संसार में रहते हुए अबदल आत्मशिव में जागना। मनुष्य-जन्म कहीं विषय-विकारों में बरबाद न हो जाय बल्कि अपने लक्ष्य परमात्म-तत्त्व को पाने में ही लगे - इस प्रकार की विवेक-बुद्धि से अगर आप जागते हो तो वह शिवरात्रि का 'जागरण' हो जाता है।

आज के दिन भगवान साम्ब-सदाशिव की पूजा, अर्चना और चिंतन करनेवाला व्यक्ति शिवतत्त्व में विश्रांति पाने का अधिकारी हो जाता है। जुड़े हुए तीन बिल्वपत्रों से भगवान शिव की पूजा की जाती है, जो संदेश देते हैं कि 'हे साधक ! हे मानव ! तू भी तीन गुणों से इस शरीर से जुड़ा है। यह तीनों गुणों का भाव 'शिव-अर्पण' कर दे, सात्त्विक, राजस, तामस प्रवृत्तियाँ और विचार अंतर्यामी साम्ब-सदाशिव को अर्पण कर दे।'

बिल्वपत्र की सुवास तुम्हारे शरीर के वात व कफ के दोषों को दूर करती है। पूजा तो शिवजी की होती है और शरीर तुम्हारा तंदुरुस्त हो जाता है। भगवान को बिल्वपत्र चढ़ाते-चढ़ाते अपने तीन गुण अर्पण कर डालो, पंचामृत अर्पण करते-करते पंचमहाभूतों का भौतिक विलास जिस चैतन्य की सत्ता से हो रहा है उस चैतन्यस्वरूप शिव में अपने अहं को अर्पित कर डालो तो भगवान के साथ तुम्हारा एकत्व हो जायेगा। जो शिवतत्त्व है वही तुम्हारा आत्मा है और जो तुम्हारा आत्मा है वही शिवस्वरूप परमात्मा है।

शिवरात्रि के दिन पंचामृत से पूजा होती है, मानसिक पूजा होती है और शिवजी का ध्यान

करके हृदय में शिवतत्त्व का प्रेम प्रकट करने से भी शिवपूजा मानी जाती है। ध्यान में आकृति का आग्रह रखना बालकपना है। आकाश से भी व्यापक निराकार शिवतत्त्व का ध्यान... ! '**ॐ... नमः... शिवाय...**'- इस प्रकार प्लुत उच्चारण करते हुए ध्यानस्थ हो जायें।

शिवरात्रि पर्व तुम्हें यह संदेश देता है कि जैसे शिवजी हिमशिखर पर रहते हैं, माने समता की शीतलता पर विराजते हैं, ऐसे ही अपने जीवन को उन्नत करना हो तो साधना की ऊँचाई पर विराजमान होओ तथा सुख-दुःख के भोगी मत बनो। सुख के समय उसके भोगी मत बनो, उसे बाँटकर उसका उपयोग करो। दुःख के समय उसका भोग न करके उपयोग करो। रोग का दुःख आया है तो उपवास और संयम से दूर करो। मित्र से दुःख मिला है तो वह आसक्ति और ममता छुड़ाने के लिए मिला है। संसार से जो दुःख मिलता है वह संसार से आसक्ति छुड़ाने के लिए मिलता है, उसका उपयोग करो।

तुम शिवजी के पास मंदिर में जाते हो तो नंदी मिलता है - बैल। समाज में जो बुद्धू होते हैं उनको बोलते हैं तू तो बैल है, उनका अनादर होता है लेकिन शिवजी के मंदिर में जो बैल है उसका आदर होता है। बैल जैसा आदमी भी अगर निष्काम भाव से सेवा करता है, शिवतत्त्व की सेवा करता है, भगवत्कार्य का भार वहन करता है तो वह पूजा जाता है। भगवत्कार्य क्या है कि '**बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय**' जो कार्य है वह भगवत्कार्य है। जो भगवान शिव की सेवा करता है, शिव की सेवा माने हृदय में छुपे हुए परमात्मा की सेवा के भाव से जो लोगों के काम करता है, वह चाहे समाज की नजर से बुद्धू भी हो तो भी देर-सवेर पूजा जायेगा। यह संकेत है नंदी की पूजा का।

शिवजी के गले में सर्प है। सर्प जैसे विषैले स्वभाववाले व्यक्तियों से भी काम लेकर उनको समाज का श्रृंगार, समाज का गहना बनाने की क्षमता, कला उन ज्ञानियों में होती है।

भगवान शिव भोलानाथ हैं अर्थात् जो भोले-भाले हैं उनकी सदा रक्षा करनेवाले हैं। जो संसार-सागर से तैरना चाहते हैं पर कामना के बाण उनको सताते हैं, वे शिवजी का सुमिरन करते हैं तो शिवजी उनकी रक्षा करते हैं।

शिवजी ने दूज का चाँद धारण किया है। ज्ञानी महापुरुष किसीका छोटा-सा भी गुण होता है तो शिरोधार्य कर लेते हैं। शिवजी के मस्तक से गंगा बहती है। जो समता के ऊँचे शिखरों पर पहुँच गये हैं, उनके मस्तक से ज्ञान की तरंगें बहती हैं इसलिए हमारे सनातन धर्म के देवों के मस्तक के पीछे आभामण्डल दिखाया जाता है।

शिवजी ने तीसरे नेत्र द्वारा काम को जलाकर यह संकेत किया कि 'हे मानव ! तुझमें भी तेरा शिवतत्त्व छुपा है, तू विवेक का तीसरा नेत्र खोल ताकि तेरी वासना और विकारों को तू भस्म कर सके, तेरे बंधनों को तू जला सके।'

भगवान शिव सदा योग में मस्त हैं इसलिए उनकी आभा ऐसे प्रभाववाली है कि उनके यहाँ एक-दूसरे से जन्मजात शत्रुता रखनेवाले प्राणी भी समता के सिंहासन पर पहुँच सकते हैं। बैल और सिंह की, चूहे और सर्प की एक ही मुलाकात काफी है लेकिन वहाँ उनको वैर नहीं है। क्योंकि शिवजी की निगाह में ऐसी समता है कि वहाँ एक-दूसरे के जन्मजात वैरी प्राणी भी वैरभाव भूल जाते हैं। तो तुम्हारे जीवन में भी तुम आत्मानुभव की यात्रा करो ताकि तुम्हारा वैरभाव गायब हो जाय। वैरभाव से खून खराब होता है। तो चित्त में ये आग लगानेवाली जो वृत्तियाँ हैं, उन वृत्तियों को शिवतत्त्व के चिंतन से ब्रह्माकार बनाकर अपने

ब्रह्मस्वरूप का साक्षात्कार करने का संदेश देनेवाले पर्व का नाम है शिवरात्रि पर्व।

समुद्र-मंथन के समय शिवजी ने हलाहल विष पीया है। वह हलाहल न पेट में उतारा, न वमन किया, कंठ में धारण किया इसलिए भोलानाथ 'नीलकंठ' कहलाये। तुम भी कुटुम्ब के, घर के शिव हो। तुम्हारे घर में भी अच्छी-अच्छी सामग्री आये तो बच्चों को, पत्नी को, परिवार को दो और घर में जब विघ्न-बाधा आये, जब हलाहल आये तो उसे तुम कंठ में धारण करो तो तुम भी नीलकंठ की नाईं सदा आत्मानंद में मस्त रह सकते हो। जो समिति के, सभा के, मठ के, मंदिर के, संस्था के, कुटुम्ब के, आस-पड़ोस के, गाँव के बड़े हैं उनको उचित है कि काम करने का मौका आये तो शिवजी की नाईं स्वयं आगे आ जायें और यश का मौका आये तो अपने परिजनों को आगे कर दें।

अगर तुम पत्नी हो तो पार्वती माँ को याद करो, जगज्जननी, जगदम्बा को याद करो कि वे भगवान शिवजी की समाधि में कितना सहयोग करती हैं ! तो तुम भी यह विचार करो कि 'पति आत्मशिव को पाने की यात्रा में आगे कैसे बढ़े ?' और अगर तुम पति की जगह पर हो तो यह सोचो कि 'पत्नी पार्वती की नाईं उन्नत कैसे हो ?' इससे तुम्हारा गृहस्थ-जीवन धन्य हो जायेगा।

शिवरात्रि का पर्व यह संदेश देता है कि जितना-जितना तुम्हारे जीवन में निष्कामता आती है, परदुःखकातरता आती है, परदोषदर्शन की निगाह कम होती जाती है, दिव्य परम पुरुष की ध्यान-धारणा होती है उतना-उतना तुम्हारा वह शिवतत्त्व निखरता है, तुम सुख-दुःख से अप्रभावित अपने समस्वभाव, ईश्वरस्वभाव में जागृत होते हो और तुम्हारा हृदय आनंद, स्नेह, साहस एवं मधुरता से छलकता है। □

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।

(मातृ-पितृ पूजन दिवस : १४ फरवरी)

बायजिद नाम के प्रसिद्ध संत हो गये। भगवत्प्राप्ति के उद्देश्य से वे अल्पायु में ही घर छोड़कर चले गये थे। उनकी माँ भगवान को प्रार्थना करती रहती कि 'हे प्रभु ! मेरे बेटे का कल्याण करना। मेरे बेटे की आयु लम्बी करना।' बूढ़ी माँ ऐसे अपने दिन बिताती थी।

बेटे को बहुत परिश्रम करने के बाद, तपस्या करने के बाद कुछ आध्यात्मिक शक्तियाँ प्राप्त हुईं। तपस्या करने से, जप-प्राणायाम करने से, एकांत और मौन से कुछ शक्तियाँ प्राप्त होती हैं।

एक दिन बायजिद तपस्वी के वेश में, फटे-पुराने कपड़ों में अपने घर के दरवाजे के पास आकर खड़े हो गये। देखा, तो माँ वही प्रार्थना दुहरा रही है : 'हे प्रभु ! मेरे बेटे का कल्याण करना।'

बायजिद धीरे-से बोले : ''माँ ! मैं आ गया।''

''कौन ?''

''तेरा गरीब बेटा।''

''अरे बेटा ! तू मेरे बुढ़ापे में आ गया !''

''माँ ! जिस बात को मैं तुच्छ समझता था, छोटी समझता था, बहुत परिश्रम के बाद पता चला कि वह छोटी बात नहीं है, बहुत बड़ी बात है। इतनी तपस्या के बाद पता चला कि माता-

पिता और गुरुजनों की दुआ बहुत बड़ी बात है। उनकी सेवा बहुत जल्दी ऊपर उठा देती है। माँ ! अब मैं तेरी सेवा करूँगा।''

एक रात्रि को माँ ने कहा : ''बेटा ! मुझे प्यास लगी है।''

घर में पानी का जो बर्तन था वह फूटा हुआ होने से खाली पड़ा था। बायजिद दूसरा बर्तन लेकर गये दूर नदी पर, नदी में से पानी लेकर आये तब देखा कि माँ गहरी नींद में जा चुकी है। सोचा, 'अब बर्तन रखकर सो जाऊँ और माँ को नींद खुलने पर मुझे उठाने में संकोच महसूस हो तो मैं सेवक कैसा ? और बर्तन रखने की आवाज से माँ की नींद टूट जाय तो ?'

उसी स्थिति में खड़े रहे। माँ नींद कर चुकी और उसकी आँख खुली। बायजिद ने माँ को पानी पिलाया।

माँ ने कारण पूछा : ''इतनी देर तक मुझे पानी क्यों नहीं पिलाया ?''

बायजिद बोले : ''तुम्हारी नींद न टूटे इसलिए बर्तन हाथ में लिये खड़ा था।''

बर्तन हाथ में रखना बड़ी बात नहीं है, बर्तन छोड़ देना बड़ी बात नहीं है बल्कि सेवा करते समय सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों का असर न होना बड़ी बात है। ठण्डी रात थी, शरीर में कुछ बुखार था, जुकाम भी हो सकता था लेकिन चित्त में एक लक्ष्य था और उस लक्ष्य के कारण इन द्वन्द्वों का असर नहीं हुआ। माँ के चित्त से भी उनके लिए आशीर्वाद निकला और वे प्रसिद्ध संत हो गये।

पूज्य बापूजी ने भी बाल्यकाल से ही अपने माता-पिता की सेवा की और उनके हृदय के आशीर्वाद से उन्हें योगिराज ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु प्राप्त हुए, जिन्होंने उन्हें भक्तवांछाकल्पतरु, विश्ववंदनीय, जीवन्मुक्त बना दिया।

बहुत रात तक पैर दबाते,
भरे कंठ पितु आशिष पाते।

पुत्र तुम्हारा जगत में, सदा रहेगा नाम।
लोगों के तुमसे सदा, पूरण होंगे काम॥

ईश्वरप्राप्ति के रास्ते गुरुद्वार पर, गुरुचरणों में जाने से माँ और कुटुम्बियों द्वारा रोका जाने पर उनकी बात को बापूजी ने अस्वीकार न किया होता और उनकी मोहमयी ममता में आकर घर पर रहते, गुरुचरणों में डटे न रहते तो बापूजी की महानता इतनी नहीं निखरती।

***

'वेलेन्टाईन डे' नहीं, 'मातृ-पितृ पूजन दिवस' मनायें

दूरदृष्टि के धनी ऋषि-मुनियों के देश के बच्चों व युवान-युवतियों को अपने ओज-तेज, बल-वीर्य का नाश करनेवाले 'वेलेन्टाईन डे' का त्याग करना चाहिए। इस दिन 'मातृ-पितृ पूजन दिवस' मनायें। बच्चे-बच्चियाँ माता-पिता का आदर-पूजन करें और उनके सिर पर पुष्प रखें, प्रणाम करें तथा माता-पिता अपनी संतानों को प्रेम करें। इस दिन बच्चे माता-पिता का सम्मान करें और माता-पिता बच्चों पर स्नेहाशीष बरसायें। प्रभु के नाते एक-दूसरे को प्रेम करके अपने दिल के परमेश्वर को छलकने दें। बेटी माँ को तिलक करे, माँ बेटी को तिलक करे। बेटा बाप को तिलक करे, बाप बेटे को तिलक करे और माता-पिता संतानों को आशीर्वाद दें : '**त्रिलोचन भव।** तुम्हारी बाहर की आँख के साथ भीतर की विवेक की, ज्ञान की कल्याणकारी आँख जागृत हो।'

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव।
बालिकादेवो भव।
कन्यादेवो भव। पुत्रदेवो भव। □

वास्तविक होली

(होली : १० मार्च)

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

होली हिन्दुओं का राष्ट्रीय, सामाजिक और आध्यात्मिक पर्व है । यह पर्व हमें यह दिखाता है कि सद्‌वृत्ति में प्रह्लाद अडिग रहा तो उसको सफलता मिली और वरदान पायी हुई होलिका असद्‌वृत्ति का आचरण करती थी तो उसका विनाश हुआ । यह सामाजिक पर्व इसलिए माना गया कि इस दिन समाज के लोग रंग उछालते हुए अपना बाह्य भेदभाव मिटाकर प्राकृतिक एकता का संदेश देते हैं ।

होलिकोत्सव वसंतोत्सव के रूप में ऋतु-परिवर्तन का एक संकेत है । होली के दिनों में चने और गेहूँ की फसल तैयार हो जाती है । भारत के कुछ क्षेत्रों में गाँव के लोग खड्ढा खोदके उसमें धान से भरा मटका रखते हैं और खड्ढा भरके उस पर होली जलाते हैं। फिर वह अर्द्धभुना धान दूसरे दिन प्रसादरूप में बाँटते हैं। अर्द्धभुने धान को खाना वात व कफ के दोषों का शमन करने में सहायक होता है । अर्द्धभुने अनाज को 'होला' कहा जाता है । ऋषि-पद्धति का कैसा ऊँचा दृष्टिकोण है कि इन दिनों में लोग होला जैसा प्राकृतिक आहार खाकर वातशामक शक्ति प्राप्त करें । कफ आदि दोषों से शरीर में जो पीड़ा होती हो उसका भी ये भूने हुए चने आदि शमन करते हैं। खजूर, नारियलपाक और मेथीपाक आदि गरिष्ठ पदार्थ खाने के दिन होली से पूरे हो जाते हैं ।

होलिकोत्सव के अवसर पर कीचड़ उछालना, धुलेण्डी के दिन धूल उछालना, जूतों का हार पहनाना, गधे पर बैठाना और गंदे स्वाँग करना - इनसे हमारी मानसिक्र वृत्तियाँ बहुत नीच हो जाती हैं, हमारी सामाजिक और मानसिक हानि होती है । तमाम प्रकार के रासायनिक रंग एक-दूसरे को लगाने से वे आँख, चेहरे और मन पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं । इस पर्व को निमित्त बनाकर कई जगहों पर तो अश्लील वातावरण पैदा हो जाता है और कामुकता के तुच्छ विचार और व्यवहार होते हैं जिससे समाज को हानि होती है । इस पर्व पर फाल्गुन शुक्लपक्ष की एकादशी से भगवान का श्रीविग्रह रथ में रखकर रथयात्रा निकालनी चाहिए और पूर्णिमा तक प्रतिदिन प्रभातफेरी, जप, ध्यान, हरिचर्चा, हरि-कीर्तन, साधु-समागम आदि करते हुए हमें बाह्य भेदभाव मिटाकर मूल में जो अभेदता है वहाँ जाना चाहिए । हकीकत में इस पर्व का उद्देश्य यह है ।

होली के दिन भक्त प्रह्लाद जैसी दृढ़ ईश्वरनिष्ठा, प्रभुप्रेम, सहनशीलता व समता का आवाहन करना चाहिए और इस दिन से विलास, वासनाओं का त्याग करके परमात्म-प्रेम, सद्‌भावना, सहानुभूति, इष्टनिष्ठा, जपनिष्ठा, स्मरणनिष्ठा, सत्संगनिष्ठा, स्वधर्मपालन, करुणा, दया आदि दैवी गुणों का अपने जीवन में विकास करना चाहिए ।

होली वर्षभर की 'मैं-तू' की पकड़ छोड़कर निखालिसता का तथा धुलेण्डी अहं-मम को धूल में डालने का संदेश देती है । होली का बाह्य रंग वस्त्रों को रँगता है, भक्ति का रंग तुम्हारे सूक्ष्म शरीर को रँगता है व आत्मज्ञान का रंग तुमको रँगता है और तुम जीवन्मुक्त हो जाते हो, तुम्हारी अहंता और ममता धूल में मिल जाती है; आज

तक का जो जन्म-मरण का बहीखाता था, वह सब धूल में मिल गया इसकी याद के लिए धुलेण्डी का उत्सव मनाया जाता है।

जिसके जीवन में प्रह्लाद की-सी अडिगता है, उसके जीवन में हजार विघ्न-बाधाएँ आने पर भी सद्वृत्ति छूटती नहीं है। सात्त्विक रास्ते चलनेवालों की संख्या छोटी होती है लेकिन वे चलते रहें तो आसुरी वृत्तिवाले बहुत संख्या में होने के बावजूद भी नष्ट हो जाते हैं। उनका आसुरी स्वभाव ही उनके विनाश का कारण बन जाता है। सात्त्विक विचारों के लोगों को पीछे नहीं हटना चाहिए।

मनुष्य विचारों का एक पुंज है और उसका मन जहाँ से स्फुरित होता है वह अद्भुत शक्तिसम्पन्न आत्मदेव, परमात्मदेव है। अंतःकरण में जो छुपी हुई हिम्मत है उसे जगाने के लिए जगन्नियंता की ऐसी व्यवस्था है कि अपने भक्त का विरोध हो ताकि उसकी छुपी हुई हिम्मत जागृत हो जाय और वह यात्रा पूरी कर सके, फिर वे चाहे नरसिंह मेहता हों, आद्य शंकराचार्य हों, दादूजी महाराज हों, रामसुखदासजी हों, चाहे मीराबाई हों, चाहे भक्त प्रह्लाद हो। प्रह्लाद के जीवन में भी देखो, विरोध-बाधाएँ आकर उसकी सुषुप्त शक्तियाँ जगाती हैं। आपके जीवन में जब विरोध-बाधाएँ आ जायें तो आप फरियाद मत करना कि हम भगवान का भजन करते हैं और मुसीबत आ गयी। मुसीबत आयी तो है लेकिन वह हर मुसीबत को कुचलने का सामर्थ्य जगाने के लिए आयी है, जन्म-मरण के चक्र को तोड़ने का सामर्थ्य जगाने के लिए आयी है इस बात पर भी आप दृढ़ रहें। आप हिम्मत मत हारना, प्रह्लाद की नाईं अडिग रहना, मीराबाई की तरह अडिग रहना।

होली का उत्सव हमें यही पावन संदेश देता है कि प्रह्लाद की तरह हम भी अपने जीवन में आनेवाली विघ्न-बाधाओं का धैर्यपूर्वक सामना करें एवं कैसी भी विकट परिस्थितियाँ आयें तो भी ईश्वर में अपनी श्रद्धा को अडिग बनाये रखें।

कई होलियाँ और धुलेण्डियाँ बीत गयीं लेकिन अब की होली हमारी वास्तविक होली हो जाय। दिल में प्रभुप्रेम की पिचकारी न लगायी तो और होली खेलकर क्या किया ? अहंता-ममता पर धूल न डाली तो धुलेण्डी मनाकर क्या किया ? अहंकाररूपी गर्दभ पर अंकुश न लगाया तो धुलेण्डी के दिन गधे पर बैठके-बैठाके भी क्या किया ? बचपन में बच्चे गुड्डे-गुड्डियों से खेलते हैं लेकिन जब बुद्धिमान हो जाते हैं तो फिर कहाँ उनसे खेलते हैं ! ऐसे ही तुम्हारी वृत्ति जब आत्मतत्त्व को पा लेती है तो फिर संसार के खिलौनों की होली क्या खेलना ! अपने राम के साथ खेलो, अपने प्रभु के साथ खेलो।

युगों-युगों के हमारे चंचल विचार और कर्म होली के दिन आत्मविद्यारूपी, ब्रह्मविद्यारूपी अग्नि में स्वाहा कर दें। अपनी चंचलता व कुसंस्कारों को होली में जलाकर अद्भुत होली मनायें।

जहरीले रंगों के स्थान पर परम शुद्ध, परम पावन परमात्मा के नाम-संकीर्तन के रंग में खुद रँगें और दूसरों को भी रँगायें। छोटे-बड़े, मेरे-तेरे के भेदभाव को भूलकर सबमें उसी एक सत्यस्वरूप, चैतन्यस्वरूप परमात्मा को निहारकर अपना जीवन धन्य बनाने के मार्ग पर अग्रसर हों।

होली हुई तब जानिये, पिचकारी गुरुज्ञान की लगे।
सब रंग कच्चे जायें उड़, एक रंग पक्के में रँगें॥
होली हुई तब जानिये, श्रुति वाक्य जल में स्नान हो।
विक्षेप मल सब जाय धुल, निश्चिंत मन अम्लान हो॥

होली के दिन वेद-वचनों में स्नान हो जाय, परमात्मा के ध्यान में स्नान हो जाय। कीचड़ में तो हलकी मति के लोग स्नान करें, श्रेष्ठ मति के लोग तो परमात्मा के ध्यान में ही स्नान करते हैं। बचकानी होली तो आज तक मनाते आये लेकिन अब ऋषि-सम्मत, वेद-सम्मत होली मनायें। □

पार्वतीजी की परीक्षा

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

पार्वतीजी ने भगवान शंकर को पाने के लिए तप किया । शिवजी प्रकट हुए और दर्शन दिये । शिवजी ने पार्वतीजी के साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया । शिवजी अंतर्धान हो गये । इतने में थोड़ी दूर किसी तालाब में एक ग्राह ने किसी बच्चे को पकड़ा । बच्चा चिल्लाता हो ऐसी आवाज आयी । पार्वतीजी ने गौर से सुना तो वह बच्चा बड़ी दयनीय स्थिति में चिल्ला रहा था : ''मुझे बचाओ... मेरा कोई नहीं है... मुझे बचाओ... !''

बच्चा चीख रहा है, आक्रांत कर रहा है । पार्वतीजी का हृदय द्रवीभूत हो गया । पार्वतीजी वहाँ गयीं । देखती हैं तो एक सुकुमार बालक है और उसका पैर ग्राह ने पकड़ रखा है । ग्राह उसे घसीटता हुआ ले जा रहा है ।

बालक कहता है : ''मेरा दुनिया में कोई नहीं । मेरी न माता है, न पिता है, न मित्र है, मेरा कोई नहीं । मुझे बचाओ !''

पार्वतीजी कहती हैं : ''हे ग्राह ! हे मगरमच्छ ! इस बच्चे को छोड़ दे ।''

मगर ने कहा : ''दिन के छठे भाग में जो मुझे प्राप्त हो, उसको मुझे अपना आहार समझकर स्वीकार करना है ऐसी मेरी नियति है और ब्रह्माजी ने दिन के छठे भाग में यह बालक मेरे पास भेजा है । अब मैं क्यों छोड़ूँ ?''

पार्वतीजी : ''हे ग्राह ! तू इसे छोड़ दे । इसके बदले में तुझे जो चाहिए वह ले ले ।''

ग्राह ने कहा : ''तुमने जो तप करके शिवजी को प्रसन्न किया और वरदान माँगा, उस तप का फल देती हो तो मैं इस बच्चे को छोड़ सकता हूँ, अन्यथा नहीं ।''

पार्वतीजी ने कहा : ''यह क्या बात कर रहे हो ! इस जन्म का ही नहीं अपितु कई जन्मों के तप का फल मैं तुझे अर्पण करने को तैयार हूँ लेकिन तू इस बच्चे को छोड़ दे ।''

ग्राह कहता है : ''सोच लो, आवेश में आकर संकल्प मत करो ।''

पार्वतीजी बोलीं : ''मैंने सोच लिया ।''

ग्राह ने पार्वतीजी से तपदान का संकल्प करवाया । तपश्चर्या का दान मिलते ही ग्राह का तन तेज से चमक उठा । बच्चे को छोड़कर ग्राह ने कहा : ''पार्वती ! तुम्हारे तप के प्रभाव से मेरा शरीर कितना सुंदर हो गया है ! मानो मैं तेजपुंज हो गया हूँ । तुमने अपने सारे जीवन की कमाई एक छोटे-से बालक को बचाने में लगा दी !''

पार्वतीजी ने कहा : ''ग्राह ! तप तो मैं दुबारा कर सकती हूँ लेकिन बालक को तू निगल जाता तो ऐसा निर्दोष बालक फिर कैसे आता ?''

देखते-देखते वह बालक अंतर्धान हो गया । ग्राह भी अंतर्धान हो गया । पार्वतीजी ने सोचा कि 'मैंने तप का दान कर दिया, अब फिर से तप करूँ ।' पार्वतीजी फिर से तप करने बैठीं । ज्यों ही थोड़ा-सा ध्यान किया, त्यों ही भगवान सदाशिव फिर से प्रकट होकर बोले : ''पार्वती ! अब क्यों तप करती हो ?''

पार्वतीजी बोलीं : ''प्रभु ! मैंने तप का दान कर दिया है ।''

शिवजी बोले : ''पार्वती ! ग्राह के रूप में मैं ही था और बालक के रूप में भी मैं ही था । तुम्हारा चित्त प्राणिमात्र में आत्मीयता का एहसास करता है या नहीं, यह परीक्षा करने के लिए मैंने लीला की थी । अनेक रूपों में दिखनेवाला मैं एक-का-एक हूँ । मैं अनेक शरीरों में, शरीरों से न्यारा अशरीरी आत्मा हूँ । प्राणिमात्र में आत्मीयता का तुम्हारा भाव धन्य है !'' ❑

अपनी कद्र करना सीखें

-पूज्य बापूजी

हमको श्रद्धा के साथ-साथ सत्संग के द्वारा समझना चाहिए कि शिवलिंग यह भगवान तो है लेकिन इस भगवान में घन सुषुप्ति में चैतन्य बैठा है। तर्क करना हो और अश्रद्धा करनी हो तो भगवान साक्षात् आ जायें तो भी दुर्योधन जैसा व्यक्ति उनमें भी अश्रद्धा करता है। दुर्योधन ने श्रीकृष्ण को कैद करने का आदेश दिया तो श्रीकृष्ण द्विभुजी से चतुर्भुजी होकर आकाश में स्थित हुए लेकिन दुर्योधन कहता है कि यह तो जादूगर है। दुर्योधन और शकुनि श्रीकृष्ण के लिए कुछ-का-कुछ बकते हैं लेकिन अर्जुन श्रीकृष्ण से फायदा उठाता है; गीता बनी और हमलोग भी फायदा उठा रहे हैं।

श्रद्धाविहीन लोग श्रीकृष्ण के दर्शन व चतुर्भुजी नारायण के दर्शन के बाद भी दुर्बुद्धि का परिचय देते हैं। ऐसे दुर्योधनों की कमी नहीं है समाज में। श्रद्धालु व समझदार सज्जन तो शालग्राम, शिवलिंग और मूर्ति में श्रद्धा एवं भगवद्भाव से अपनी बुद्धि और जीवन में चिन्मय चैतन्य को प्रकट करते हैं।

जिसके जीवन में सूझबूझ है, जिसे अपने जीवन की कद्र है वह महापुरुषों, शास्त्रों, वेदों की कद्र करेगा। शराब व मांस का सेवन करनेवालों की मति ईश्वरप्राप्ति के योग्य नहीं रहती। ऐसे लोग स्वयं का ही अवमूल्यन करते हैं। 'गुरुवाणी' में आता है :

जे रतु[1] लगै कपड़ै जामा[2] होइ पलीतु[3]।
जो रतु पीवहि माणसा तिन किउ[4] निरमलु चीतु[5]।

भगवान राम कहते हैं :

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।

शराब और मांस निर्मल मति को मलिन कर देते हैं। आत्मसाक्षात्कार की योग्यतावाला मनुष्य अपनेको अयोग्य बनानेवाला खान-पान और चिंतन करे, अपने आत्मदेव को छोड़कर देश-देशान्तर में ईश्वर को माने या स्वर्ग अथवा बिहिश्त की कल्पना करे यह कितनी तुच्छ बात है ! कितनी छोटी मान्यता, मति-गति है !

जिसको अपने जीवन की कद्र नहीं है वह शास्त्रों की कद्र क्या करेगा, महापुरुषों की कद्र क्या करेगा, अपना ही जीवन खपा देगा। यदि तुमको अपने जीवन की कद्र है, अपने जीवनदाता की, शास्त्रों की, अपने माता-पिता की कद्र है कि कितनी मेहनत करके तुम्हें पढ़ाया, बड़ा किया तो तुम ऐसे कर्म करो जिनसे तुम्हारे सात कुल तर जायें।

दुःख आया तो दुःखी हो गये, सुख आया तो सुखी हो गये तो तुम्हारे-हमारे में और कुत्ते में क्या फर्क है ? अरे, सुख को सपना, दुःख को बुलबुला, दोनों को मेहमान जान... अपनेको दास क्यों बनाता है ? पदोन्नति हो गयी तो हर्षित हो गये, बदली हो गयी तो सिकुड़ गये। इतनी लाचार जिंदगी क्यों गुजारता है ? गुरु की शरण जा। जरा-सा किसीने डाँट दिया, तेरी खुशी गायब ! जरा-सा किसीने पुचकार दिया तो खुश ! तो तू तो जर्मन का खिलौना है और क्या है ? जरा-सा नोटिस आ गया तो तेरी चिंता बढ़ गयी। जरा-सा कहीं छापा पड़ा तो तेरी मुसीबत बढ़ गयी। जरा-सी अफसर से पहचान हो गयी तो तूने छाती फुला दी। तू इन खिलौनों को सच मानकर क्यों उलझ रहा है ? अपने आत्मा को जानने के लिए कुछ तो आगे बढ़ भाई ! जो परम मित्र, परम हितैषी है उसका अहोभाव से चिंतन कर, उसकी स्मृति कर और उसका ज्ञान पाकर उसीमें आनंदित हो, प्रशांत हो और विश्रांति पा। ❐

१. रक्त २. वस्त्र ३. अपवित्र ४. कैसे ५. शुद्ध चित्त

मनुष्य दुःखी क्यों है ?

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

मनुष्य को अपने चित्त को किसी भी परिस्थिति व प्रसंग में दुःखी नहीं होने देना चाहिए। अगर चित्त दुःखी हुए बिना नहीं रहता है तो भगवान के चरणों में प्रार्थना करनी चाहिए कि 'हे प्रभु ! इस दुःखरूप संसार से बचाकर हमें आत्मज्ञान के प्रकाश की ओर ले चल, मोह-माया से छुड़ाकर सत्यस्वरूप आत्मा की ओर ले चल।' इस तरह करुण प्रार्थना करके भगवान या गुरु को निमित्त बनाकर उनके आगे अपने दुःख को बाहर निकाल देना चाहिए, उसे पी नहीं जाना चाहिए।

वास्तव में मनुष्य दुःखी क्यों है ? क्योंकि जो वर्तमान में है उसकी कद्र नहीं, जो अपने पास है उसका आनंद नहीं और दूसरे को देखकर फरियाद करता रहता है। मैंने सुनी है एक कथा -

मोर का बच्चा रो रहा था। मोरनी बोली : ''बिट्टू ! क्यों रोता है ?''

बच्चा बोला : ''देखो, मैना का बच्चा कितना सुंदर है, कितना बढ़िया है !''

मोरनी बोली : ''चल, मैं तुझे उसके पास ले चलती हूँ।''

गये तो मैना का बच्चा रो रहा था।

मैना ने अपने बच्चे से पूछा : ''तू क्यों रोता है ?''

बोला : ''मोर का बच्चा कितना सुंदर है !''

तो मोर का बच्चा समझता है कि मैना का बच्चा बढ़िया है और मैना का बच्चा समझता है मोर का बच्चा बढ़िया है। सेठ समझता है कि अफसर को मौज है और अफसर समझता है सेठों को मौज है। कुछ पुरुषों को यह भ्रम है कि स्त्रियाँ सुखी हैं और कुछ स्त्रियों को भ्रम है कि पुरुष सुखी हैं।

'श्री योगवासिष्ठ महारामायण' में काकभुशुण्डिजी वसिष्ठजी से कहते हैं : 'हे मुनीश्वर ! जो कुछ ऐश्वर्यसूचक सुंदर पदार्थ हैं वे सब असत् रूप हैं। पृथ्वी पर चक्रवर्ती राजा और स्वर्ग में गंधर्व, विद्याधर, किन्नर, देवता और उनकी स्त्रियाँ व देवताओं की सेना आदि सब नाशवान हैं। मनुष्य, दैत्य, देवता तथा पहाड़, सरोवर, नदियाँ आदि जो कुछ बड़े पदार्थ हैं वे सभी नाशवान हैं। स्वर्ग, पृथ्वी व पाताल लोक में जो कुछ भोग हैं वे सब असत् और अशुभ हैं। कोई पदार्थ श्रेष्ठ नहीं। न पृथ्वी का राज्य श्रेष्ठ है, न देवताओं का रूप श्रेष्ठ है और न नागों का पाताल लोक श्रेष्ठ है, न बहुत जीना श्रेष्ठ है, न मूढ़ता से मर जाना श्रेष्ठ है, न नरक में पड़ना श्रेष्ठ है और न इस त्रिलोकी में अन्य कोई पदार्थ श्रेष्ठ है। जहाँ संत का मन स्थित है वही श्रेष्ठ है।'

सुबह उठकर उस सुखस्वरूप प्रभु में बैठ जाओ : 'मेरा परमात्मा सत् है, चित् है, आनंदस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है। हे मेरे प्यारे !

दीन दयाल बिरिदु संभारी।
हरहु नाथ मम संकट भारी ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।'

तुम तो भगवत्स्मृति करो, भगवदाकार वृत्ति करो। शत्रुआकार वृत्ति होगी तो अंदर में जलन होगी। भयाकार वृत्ति, द्वेषाकार वृत्ति, रागाकार वृत्ति, मोहाकार वृत्ति - ये सब हम लोगों को फँसानेवाली वृत्तियाँ हैं। वृत्ति में डर आ गया **(शेष पृष्ठ ११ पर)**

निष्काम कर्मयोग

एक बार श्री रमण महर्षि से 'वूरीज कॉलेज, वैलौर' के तेलगू के पंडित श्री रंगचारी ने निष्काम कर्म-विषयक जानकारी के लिए जिज्ञासा प्रकट की। महर्षि ने कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ समय पश्चात् महर्षि पर्वत पर घूमने गये। पंडित सहित कुछ अन्य व्यक्ति भी उनके साथ थे। मार्ग में एक काँटेदार लकड़ी पड़ी थी। महर्षि ने उसे उठा लिया और वहीं बैठकर धीरे-धीरे उसे ठीक करना प्रारंभ कर दिया।

काँटे तोड़े गये, गाँठें घिसकर समतल की गयीं, पूरी छड़ी एक खुरदुरे पत्ते से रगड़कर चिकनी बनायी गयी। इस पूरे कार्य में लगभग छः घंटे लगे। एक काँटेदार लकड़ी से इतनी सुंदर छड़ी बन जाने पर सब आश्चर्य कर रहे थे। जैसे ही सब चले, मार्ग में एक गड़रिया लड़का दिखा। उसकी छड़ी खो गयी थी इसलिए वह परेशान था। महर्षि ने तुरंत वह नयी छड़ी उस लड़के को दे दी और चल दिये।

तेलगू पंडित ने कहा : ''यह मेरे प्रश्न का यथार्थ उत्तर है।''

तेलगू पंडित को अपने प्रश्न का उत्तर कैसे मिला, सोचें। पाठक इसमें अपनी मति लगायें।

ममतावालों की परेशानी मिटाना स्वार्थ है। जिनसे ममता नहीं है उनकी परेशानी मिटाना यह निष्काम कर्म है। निरुद्देश्य कर्म नहीं, स्वार्थपूर्ण कर्म नहीं, कर्म से पलायनता नहीं, कर्म में डूबे रहना भी नहीं, कर्म के फल की लोलुपता भी नहीं!

विचारते-विचारते निर्लेप नारायण में थोड़ा शांत होना शुरू करो... फिर विचारो, फिर शांत हों। ॐकार का दीर्घ जप भी परम सत्कर्म है। ध्यान, शास्त्र-पठन और दूसरों को संस्कृति के प्रचार की ओर मोड़ना यह सीधा कर्मयोग है। धनभागी हैं 'ऋषि प्रसाद' की सेवा करनेवाले! धनभागी हैं समाज में सद्विचार, सद्भाव व सत्शास्त्र का प्रचार करनेवाले! जैसे गड़रिये को सहारा मिला छड़ी का, ऐसे ही संसार में सद्विचार का सहारा मिलता है। यह निष्काम कर्म, ज्ञान की छड़ी लोक-परलोक में भी रक्षा करती है। **ॐ श्री परमात्मने नमः। ॐ शांतिः...** हे स्वार्थ! हे छल, छिद्र, झूठ, कपट! दूर हटो। निश्छल नारायण में, सत्यस्वरूप प्रभु में, ज्ञानस्वरूप-साक्षीस्वरूप में वासनाओं की क्या आवश्यकता है? छल, छिद्र कपट की क्या आवश्यकता है? ॐ... ॐ... ॐ...

भगवान राम कहते हैं :

मोहि कपट छल छिद्र न भावा।

स्वार्थ में ही छल, छिद्र, कपट होते हैं। ऊँचे उद्देश्य में कहाँ छल, छिद्र, कपट और वासना! आपका ऊँचा 'मैं', ब्रह्मस्वभाव प्रकट करो। देर मत करो। ❑

(पृष्ठ १० 'मनुष्य दुःखी क्यों है ?' का शेष)

तो भय पैदा होगा अथवा राग पैदा होगा, द्वेष पैदा होगा, चिंता पैदा होगी और इससे हमारी शक्तियों का ह्रास होता है। तो क्या करें?

हम भगवान के हैं, भगवान हमारे हैं और भगवान हमारे परम हितैषी हैं, परम सुहृद हैं। भगवान को अपना मान लो, जो कुछ सुख-दुःख आता है उसको साक्षीभाव से देखो, यथोचित व्यवहार करो, अपना उद्देश्य ऊँचा रखो। इससे सारे दुःखों के सिर पर पैर रखने की कला आ जायेगी। ❑

तेरी मर्जी पूरण हो

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

आत्मा अचल है, परमात्मा अचल है। तुम अचल से मिलो। तुम तिनके की नाईं अपनेको कितना बहा रहे हो - जरा-सा मनचाहा नहीं हुआ तो अशांति... जरा-सा विकार को पोषण नहीं मिला तो अशांति... जरा-सा अहं को पोषण नहीं मिला तो अशांति, दुःख... जरा-सा किसी नौकर ने सलाम नहीं मारा तो अशांति... जरा किसीने तुम्हारी 'हाँ' में 'हाँ' नहीं भरी तो अशांति... छोटी-छोटी बात में तुम कितने छोटे हो जाते हो !

तुम जैसा चिंतन करते हो वैसा तुम्हारा चित्त हो जाता है। इसलिए कृपा करके तुम भगवद्चिंतन करो। सुबह उठो और स्मरण करो कि 'मेरे हृदय में भगवान है। बाहर घूमूँगा लेकिन उसीकी सत्ता से। बार-बार उसीमें आऊँगा।' श्वासोच्छ्वास में अजपा गायत्री को जपो। नामदान के वक्त जो युक्तियाँ बतायी थीं, उनका अभ्यास करो। व्यवहार के हरेक घंटे में २-५ मिनट आत्मविश्रांति का अभ्यास करो।

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता (८.८) में कहा है :

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥

'हे पार्थ ! यह नियम है कि परमेश्वर के ध्यान के अभ्यासरूप योग से युक्त, दूसरी ओर न जानेवाले चित्त से निरंतर चिंतन करता हुआ मनुष्य परम प्रकाशरूप दिव्य पुरुष को अर्थात् परमेश्वर को ही प्राप्त होता है।'

अभ्यास को योग में बदल दो। तुम्हारा चित्त अन्यगामी मत होने दो; चित्तवृत्ति अन्य-अन्य व्यक्तियों में जायेगी, अन्य-अन्य व्यवहार में जायेगी लेकिन अन्य-अन्य की गहराई में जो भगवान छुपा है वह अनन्य है, बार-बार उसीका स्मरण करो।

ट्यूबलाइट अलग है, पंखा अलग है, मोटर पंप अलग है, फ्रिज अलग है लेकिन है तो सबमें बिजली की सत्ता, ऐसे ही सबमें मेरा प्रभु है। मित्र के रूप में भी तू है, पिता के रूप में भी तू है, माता के रूप में भी तू है। बोले : 'पिता के रूप में भी भगवान है तो वह भगवान बोलता है सत्संग में मत जाओ तो फिर हम सत्संग में जायें कि नहीं जायें ? उसकी मर्जी पूर्ण करें कि नहीं करें ?'

एक महिला ने रामसुखदासजी महाराज से पूछा कि 'हमारे ससुर में भी तो ब्रह्म है, भगवान है। ससुरजी कहते हैं कि कथा में मत जाओ तो हम कथा में आयें कि नहीं आयें ? अगर कथा में नहीं आते तो सत्संग नहीं मिलता, मन पवित्र नहीं रहता, संसार में जाता है। अगर कथा में आते हैं तो ससुररूपी भगवान की आज्ञा का उल्लंघन होता है।'

ससुररूपी भगवान नहीं रोकता है, ससुररूपी मोह रोकता है, ससुररूपी अहंकार रोकता है। पितारूपी भगवान नहीं रोकता है, पितारूपी अहंकार रोकता है। पिता के रूप में जो अहं है वह 'ना' बोलता है। ईश्वर सत्संग में जाने को 'ना' कभी नहीं बोलता। तो सास की, ससुर की, माँ की, बाप की इस प्रकार की आज्ञा कैसी है ? मोहयुक्त है।

तुमने सुना है कि सबमें भगवान है और

भगवान की मर्जी पूर्ण हो तो पत्नी कहेगी : 'चलो पिक्चर में; मेरे में भी तो भगवान है, मेरी बात मान लो ।' शराबी कहेगा : 'मेरे में भी भगवान है, पी लो प्याली ।' जुआरी कहेगा : 'मेरे में भी भगवान है, जरा खेल लो मेरे साथ चौसर, ताश ।'

नहीं ! सबमें भगवान है अर्थात् मेरा अंतर्यामी भगवान है । हजारों जुआरी खेल रहे हैं, खेलने दो उनको । चलो, हम उसी (अंतर्यामी) के साथ खेलते हैं । ऐसा करके अपनेको अंतर्मुख होना है । निगुरे लोगों की 'हाँ' में 'हाँ' करके अपनी साधना नहीं बिगाड़नी है । मोह में आये हुए कुटुम्बियों की 'हाँ' में 'हाँ' करके अपनेको खपा नहीं देना है । उस ईश्वर की 'हाँ' में 'हाँ' का अर्थ है - आप जो नहीं चाहते वह हो रहा है... समझो, आप अपमान नहीं चाहते और हो रहा है तो उसकी 'हाँ' में 'हाँ' करो तो अपमान की समस्या खत्म हो जायेगी । आप चाहते हैं कि ऐसा खाने को मिले, ऐसा रहने को मिले और वह नहीं हो रहा है तो 'चलो, जैसी उसकी मर्जी !'- ऐसा करके आत्मसंतोष कर आत्मसुख में जाना है । ऐसा नहीं कि जुआरियों के साथ चल दिये, गँजेड़ियों के साथ चल दिये, फिल्म में चल दिये ।

विकारों की मर्जी पूर्ण न हो, ईश्वर की मर्जी पूर्ण हो, बस । अहंकार की मर्जी पूरी न हो, वासनावाले दोस्तों की मर्जी पूरी न हो लेकिन उनकी गहराई में जो मेरा परमात्मा है उसकी मर्जी पूर्ण हो । बस, इतना ही तो करना है ! दिखता इतना है लेकिन इसमें सब कुछ आ जाता है । श्वासोच्छ्वास की साधना शुरू करो, उससे अंतरात्मा का सुख शुरू हो जायेगा । आत्म-विश्रांति... ॐ आनंद...

कई लोग ध्यान करते हैं न, तो अपेक्षा रखते हैं कि ध्यान ऐसा लगना चाहिए... अरे, ऐसा लगना चाहिए, वैसा दिखना चाहिए... - इससे तो फिर नहीं होगा । ध्यान में बैठो तो 'तेरी मर्जी पूरण हो । तेरी मर्जी पूरण हो प्रभु ! तेरी जय हो ।...' शुरू हो गया बस, चिंतन हो गया, आराम हो गया ! निःसंकल्प होते जाओ... 'श्री नारायण स्तुति' (आश्रम से प्रकाशित एक पुस्तक) पढ़ते जाओ, निःसंकल्प होते जाओ... 'श्री नारायण स्तुति' पढ़ी और गोता मारा... इससे जल्दी भगवत्सुख, दिव्य सुख शुरू हो जायेगा ।

शरीर से जो कुछ कर्म करते हो उस अंतर्यामी की प्रसन्नता के लिए करो । विकार को पोसने के लिए नहीं, अहंकार को पोसने के लिए नहीं, ईश्वर की प्रसन्नता के लिए काम करो तो वह तुम्हारी सच्ची सेवा हो जायेगी । 'फलाना भाई, फलाना भाई' - ऐसा करके लोग तुम्हारे से काम लेना चाहते हैं तो तुम अंदर सावधान रहो कि इस शरीर का नाम करने के लिए हम सेवा कर रहे हैं या शरीर में छुपे हुए परमात्मा अथवा गुरु को साक्षी रखकर हम सेवा कर रहे हैं ? केवल सावधानी बरतो तो तुम्हारी सेवा में चार चाँद लग जायेंगे !

जो वाहवाही के लिए सेवा करते हैं उनका स्वभाव उद्धत हो जाता है, गंदा हो जाता है । वे कुत्तों की नाईं आपस में लड़ते-झगड़ते रहते हैं लेकिन भगवान की प्रसन्नता के लिए, गुरु की प्रसन्नता के लिए जो सेवा करते हैं उनका स्वभाव बड़ा मधुर हो जाता है ।

शास्त्र, ईश्वर तथा गुरु को स्वीकृति दे दो और अहं को अस्वीकृति दे दो, कल्याण हो जायेगा । तुम स्वीकृति दे दो : 'वाह ! तेरी मर्जी ! तेरी मर्जी पूरण हो !' भगवान की मर्जी अगर पूर्ण करने लग गये तो भगवान पूर्ण हैं, पूर्ण तो पूर्ण ही चाहेगा । ऐसे ही भगवान ज्ञानस्वरूप हैं, आनंदस्वरूप हैं, मुक्तस्वरूप हैं तो उनकी मर्जी पूर्ण होने दो, तुम्हारे बाप का जाता क्या है ! हम स्वीकृति नहीं देते हैं, अपनी मर्जी अड़ाते हैं तभी

परेशान होते हैं। तेरी मर्जी पूरण हो ! अपना नया कोई संकल्प न करो, अपनी नयी कोई पकड़ न रखो, ईश्वर की मर्जी पूर्ण होगी तो ईश्वर तुमको ईश्वर बना देगा, ब्रह्म तुमको ब्रह्म बना देगा क्योंकि तुम उसके सनातन अंश हो।

बेवकूफी यह होती है कि हम ईश्वर को भी बोलते हैं कि मेरी मर्जी से कर : 'हे भगवान ! बेटा हो जाय। इतने साल के अंदर हो जाय और ऐसा हो जाय...।' मानो उसको कोई अक्ल ही नहीं है। तू भगवान के पास गया कि नौकर के पास गया रे ! यह असावधानी है। 'हे भगवान ! जरा ऐसा हो जाय, मौसम अच्छा हो जाय।' अरे ! वह जो करता है ठीक है, उसकी मौज है ! 'मौसम ऐसा है, वैसा है... तू ऐसा कर दे, वैसा कर दे...।' नहीं, 'तेरी मर्जी पूरण हो !' तो मौसम आपको परेशान नहीं करेगा। आप स्वीकृति दे दो, बस। कोई दो गालियाँ देता है तो 'आहा ! गालियाँ दिलाकर अपमान कराके तू मेरा अहंकार मिटाता है। ॐ ॐ... तेरी मर्जी पूरण हो !'- ऐसा मन-ही-मन कहो तो तुम्हारी साधना हो जायेगी यार ! 'बहुत गर्मी हो रही है... हाय रे ! गर्मी हो रही है...'- ऐसा करोगे तो गर्मी सतायेगी। जिसको बारिश का मजा लेना है उसको गर्मी भी सहनी पड़ती है। बारिश के लिए गर्मी भी जरूरी है। सर्दी पचाने के लिए भी गर्मी जरूरी है और गर्मी पचाने के लिए सर्दी जरूरी है। मान पचाने के लिए अपमान जरूरी है। जीवन को पचाने के लिए मृत्यु जरूरी है। वाह ! जो जरूरी है सब तूने किया। तेरी मर्जी पूरण हो ! बस इतना ही तो मंत्र है ! और कोई बड़ा नहीं है और गुप्त भी नहीं है बाबा ! आनंद-ही-आनंद है !

हर रोज खुशी, हर दम खुशी, हर हाल खुशी।
जब आशिक मस्त प्रभु का हुआ,
तो फिर क्या दिलगीरी बाबा ॥ □

नरक पावे सोई

(परम पूज्य भगवत्पाद श्री श्री लीलाशाहजी महाराज)

मानव बनो, मानवता के गुण सीखो और प्राप्त करो। इन्सान वह है जो सबका भला सुने और करे। मीरा ने कहा है :

जो निंदा करे हमारी, नरक पावे सोई।
आप जाये नरक में, पाप हमारे धोई ॥

अपनेको तो पहचाना नहीं और दूसरों की पहचान करने में लग गया : 'यह ऐसा है, वह ऐसा है...।' अपनेको अर्थात् आत्मा को। कोई विरला होता है, जो अपने-आपको पहचानता है। प्रत्येक कहेगा कि मैं सही हूँ। तुम कहोगे कि 'स्वामीजी ! यह बात (अपने-आपको पहचानना) आवश्यक है क्या ?' अरे हाँ ! जिसने स्वयं को न पहचाना, वह दूसरों को क्या पहचानेगा ? वह तो पशु है !

मनुष्य-शरीर प्राप्त करके यदि तुमने सद्स्वभाव धारण नहीं किया, हृदय में ज्ञान के सूर्य को नहीं जगाया, अपने-आपको नहीं पहचाना तो फिर संसार में आकर तुमने क्या किया ? अपने-आपको पहचान लेने में ही मानव का कल्याण है।

निंदा-स्तुति जीव को फँसानेवाली है। निंदा, द्वेष, चालबाजी, कपट - इनसे आप अपनी व समाज की हानि कर रहे हैं और न जाने कितनी योनियों में निंदा एवं कपट का फल भोगेंगे !

कहा गया है :

कपट गाँठ मन में नहीं, सबसे सरल स्वभाव।
नारायण वा दास की, लगी किनारे नाव ॥

अतः कपटरहित होकर भगवत्प्रेमी महापुरुषों का संग करके, सत्संग करके अपने-आपको पहचान लो तो जन्म-मृत्यु के दुःखों से सदा के लिए छूट जाओगे। □

किसके साथ कैसा व्यवहार ?

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

आपको व्यवहारकाल में अगर भक्ति में सफल होना है तो तीन बातें समझ लो :

(१) अपने साथ पुरुषवत् व्यवहार करो। जैसे पुरुष का हृदय अनुशासनवाला, विवेकवाला होता है, ऐसे अपने प्रति तटस्थ व्यवहार करो । कहीं गलती हो गयी तो अपने मन को अनुशासित करो।

(२) दूसरों के साथ मातृवत् व्यवहार करो। जैसे माँ बालक के प्रति उदार होती है, उसी तरह दूसरों के साथ उदार व्यवहार करो । पूत कपूत हो जाय लेकिन माता कुमाता नहीं होती । इसी प्रकार दूसरों के साथ मातृवत् व्यवहार करना चाहिए ।

(३) भगवान के साथ शिशुवत् व्यवहार करो। जीवन सरल, स्वाभाविक, निर्दोष होगा तो भगवत्प्राप्ति सहज है और जीवन जितना अड़ा-कड़ा-जटिल होगा, छल-छिद्र-कपटयुक्त होगा, उतना भगवान हमसे दूर होंगे। भगवान राम कहते हैं : **मोहि कपट छल छिद्र न भावा।** अतः इनसे बचो। जैसे निर्दोषचित्त शिशु माँ की गोद में अपनेको डाल देता है, ऐसे ही आप भी कभी-कभी उस नारायणरूपी माँ की गोद में उसीका ध्यान-चिंतन करते हुए निश्चिंत होकर लेट जाओ कि 'मैं उस परमात्मा में, ईश्वरीय सुख में विश्रांति पा रहा हूँ... मैं निश्चिंत हूँ... जो होगा प्रभु जानें।'

इसी प्रकार पतंजलि ऋषि ने 'पातंजल योग-दर्शन' में सफल व्यवहार के चार सिद्धांत बताये हैं :

(१) मैत्री : जो श्रेष्ठ लोग हैं, सत्संगी हैं, भगवान के रास्ते जाते हैं व दूसरों को ले जाते हैं, उनसे मित्रताभरा व्यवहार करो। उनके साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर उनके दैवी कार्य में भागीदार हों ।

(२) करुणा : आपसे जो छोटे हैं, नासमझ हैं, नौकर हैं, बच्चे हैं, कम योग्यतावाले हैं उनसे करुणाभरा व्यवहार करो ।

(३) मुदिता : जो अच्छे कार्य में, दैवी कार्य में लगे हैं उनका अनुमोदन करो।

(४) उपेक्षा : जो निपट निराले हैं, उनको छोड़ो। उनको ठीक करने का ठेका आप लोगे तो आप परेशान हो जाओगे। ऐसे लोग समझो, आपके लिए पैदा ही नहीं हुए। उनकी उपेक्षा कर दो। ❒

(पृष्ठ २४ 'चल-अचल' का शेष) अचल में प्रीति हो जाय, अगर अचल का ज्ञान पाने में लग जायें अथवा 'मैं कौन हूँ ?' यह खोजने में लग जायें तो यह अचल परमात्मा दिख जायेगा अथवा 'परमात्मा कैसे मिलें ?' इसमें लगोगे तो अपने 'मैं' का पता चल जायेगा । क्योंकि जो मैं हूँ वही आत्मा है और जो आत्मा है वही अचल परमात्मा है। जो बुलबुला है वही पानी है और पानी ही सागर के रूप में लहरा रहा है । बोले : ''बुलबुला सागर कैसे हो सकता है ?''

बुलबुला सागर नहीं है लेकिन पानी सागर है। ऐसे ही जो अचल आत्मा है वह परमात्मा का अविभाज्य अंग है। घड़े का जो आकाश है, थोड़ा दिखता है लेकिन है यह महाकाश ही।

जो अचल है उसमें आ जाओ तो चल का प्रभाव दुःख नहीं देगा। नहीं तो चल कितना भी ठीक करो, शरीर को कभी कुछ-कभी कुछ होता ही रहता है। 'यह होता है तो शरीर को होता है, मुझे नहीं होता' - ऐसा समझकर शरीर का इलाज करो लेकिन शरीर की पीड़ा अपने में मत मिलाओ, मन की गड़बड़ी अपने अचल आत्मा में मत मिलाओ तो जल्दी मंगल होगा। ❒

मन-बुद्धि मुझमें लगा...

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

यदि भगवान को भाव से मापने जाओ तो एक तरफ तो हृदय थोड़ा-बहुत भाव में आ जाता है लेकिन बुद्धि गड़बड़ करती है और कहीं बुद्धि समझती है तो हृदय गड़बड़ करता है।

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं :

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।

'मुझमें मन को लगा और मुझमें ही बुद्धि को लगा।' **(गीता : १२.०८)**

तत्त्वज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो सब भगवान हैं, सारा विश्व भगवान है, सर्वत्र भगवान हैं तो भगवान को छोड़कर मन-बुद्धि जा कहाँ सकते हैं ? लेकिन यह तत्त्वज्ञान की आँख हो तब ! जैसे आकाश को छोड़कर तुम कहीं नहीं जा सकते, चाहे अमेरिका जाओ, चाहे लंदन, फ्रांस, जर्मनी, जापान, स्वर्ग, नरक, पाताल, तलातल, रसातल, भूतल, भुवर्लोक, जनःलोक, तपःलोक, महःलोक कई लोकों में चले जाओ लेकिन आकाश को छोड़कर कहाँ जाओगे ? जैसे आकाश सर्वत्र व्याप्त है, परमात्मा तो उससे भी अधिक सूक्ष्म है, सर्वत्र व्याप्त है तो भगवान को छोड़कर तुम्हारे मन-बुद्धि कहीं जा ही नहीं सकते। तुम उन्हें भेजना चाहो तो भी नहीं जा सकते। जैसे तुम्हारा पांचभौतिक शरीर भौतिक आकाश से बाहर नहीं जा सकता, वैसे तुम्हारे सूक्ष्म भूतों के मन-बुद्धि चिदाकाश को छोड़कर कहीं नहीं जा सकते लेकिन यह बात जब तक समझ में नहीं आती तब तक ये सब साधनाएँ हैं, सब मजदूरियाँ हैं।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'हे अर्जुन ! तू मेरा बहुत प्यारा है, इसलिए मैं तुझे गुह्यतम ज्ञान सुनाता हूँ।'

तो कुछ-न-कुछ योग्यता है, कुछ-न-कुछ त्याग है, कुछ-न-कुछ पुण्य है, कुछ-न-कुछ सहयोग है इसीलिए हमलोग सुन पाते हैं। जब इस जन्म में इतना पुण्य है, इतनी योग्यता है तो फिर थोड़ा आगे चलने में क्या हरकत है ? डरने की जरूरत नहीं है।

आँख सबको देखती है लेकिन अपने-आपको नहीं देखती है। अपना-आपा तो बहुत नजदीक है, और बहुत ज्यादा नजदीक है इसलिए दिखता भी नहीं। परमात्मा हमलोगों के नितांत नजदीक है, और नितांत नजदीक है इसलिए दूर लगता है। हमारी इन्द्रियों का, मन का, बुद्धि का प्रवाह बाहर हो गया, इसलिए दूर लगता है, वास्तव में तनिक भी दूर नहीं। भगवान कहते हैं : 'मन-बुद्धि को मेरे में लगा दो।'

उड़िया बाबाजी के शिष्य अखण्डानंदजी जब दरकतिया बाबाजी के पास गये, तब बाबा ने कहा कि 'तुम २४ घण्टे भगवान से मिलते हो। खोजो कि तुम्हारा मन भगवान के सिवाय और कौन-कौन-सी जगह पर जाता है ? और जिस-जिस जगह पर जाता है उनमें ऐसी कौन-सी जगह है कि जहाँ भगवान न हो ?'

उन्हें सोचने का मौका मिल गया और सोचते-सोचते उनका मन शांत हो गया व पता चला कि बुद्धि भगवान से उठती है तथा फिर भगवान में ही समाहित हो जाती है। बाहर भी भगवान है और भीतर भी भगवान है। जहाँ-जहाँ देखो, नाम-रूप को हटाओ तो भगवान-ही-भगवान है। उनको

तो कुछ रास्ता मिल गया, अब हमलोगों को भी समझना पड़ेगा ।

श्री रमण महर्षि को किसीने कहा कि ''भगवन् ! प्रभु के, भगवान के दर्शन करने हों तो कैसे होंगे ?''

महर्षि ने कहा : ''सोचो, मैं कौन हूँ ? अपनेको पूछो, मैं कौन हूँ ? अपने 'मैं' को खोजोगे तो भगवान के दर्शन हो जायेंगे ।''

अधिकारी जिज्ञासु को यह उपदेश दिया ।

उन दिनों विदेश से जो ईसाइयत के प्रचारक आये थे, उन्होंने देखा रमण महर्षि का नाम है । सोचा, अगर इस साधु को ईसाइयत में लाया जाय तो बहुत सारे हिन्दू ईसाई हो जायेंगे । तो ईसाइयों के उपदेशक जो फादर लोग होते हैं, उनमें से दो मुख्य व्यक्ति रमण महर्षि को प्रभावित करने के लिए उनके पास आये । बोले : ''आपने भगवान के दर्शन किये हैं ?''

महर्षि ने कहा : ''हाँ, किये हैं ।''

''हमको कराओ फिर ।''

''कल सुबह कराऊँगा, आ जाना ।''

दूसरे दिन रमण महर्षि अरुणाचल घूमने गये और पादरी उनके पीछे-पीछे गये । एक कोढ़ी था । उसको महर्षि ने साफ किया, घावों पर दवाई लगायी, पट्टियाँ-वट्टियाँ बाँधीं । वे पादरी देखते रह गये और बोले कि ''आप तो हमें भगवान के दर्शन करानेवाले थे ?''

महर्षि बोले : ''आपने अभी प्रभु के दर्शन नहीं किये ? मैं प्रभु की ही तो सेवा कर रहा था !''

पादरी प्रभावित हो गये कि ये तो ईसा जैसे हैं । इनको तो सबमें भगवान दिखते हैं । वे आये थे गुरु बनने के लिए लेकिन चेले बनकर रवाना हो गये ।

जो सेवापरायण हैं, दीन-दुःखियों की सेवा में प्रभु की सेवा देखने का जिनको उपदेश मिला है अथवा कला आ गयी है उनके लिए वह उपदेश है लेकिन केवल दीन-दुःखियों में ही प्रभु दिखे ऐसा नहीं, अपने में भी प्रभु दिखे । तो जहाँ-जहाँ तुम्हारा मन और बुद्धि जाय वहाँ-वहाँ नाम, रूप - सबको माया समझकर हटा दो तो उनकी गहराई में जो है वह चैतन्य है । जैसे आईना और प्रतिबिम्ब हटा दें तो बाकी क्या बचता है ?

इसलिए भगवान कहते हैं :

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥

'मुझमें मन को लगा और मुझमें ही बुद्धि को लगा । इसके उपरांत तू मुझमें ही निवास करेगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।' □

निःस्वार्थ होकर कार्य कर,
बदला कभी मत चाह रे ।
अभिमान मत कर लेश भी,
मत कष्ट की परवाह रे ॥
क्या खान हो क्या पान हो,
क्या पुण्य हो क्या दान हो ।
सब कार्य भगवत् हेतु हों,
क्या होय जप क्या ध्यान हो ॥
कुछ भी न कर अपने लिए,
कर कार्य सब शिव के लिए ।
पूजा करे या पाठ कर,
सब प्रेम भगवत् के लिए ॥
सब कुछ उसीको सौंप दे,
निशदिन उसीको प्यार कर ।
सेवा उसीकी कर सदा,
दूजा न कुछ व्यापार कर॥

(आश्रम से प्रकाशित पुस्तक 'आत्मगुंजन' से)

उद्देश्य और आश्रय

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

संसार को अनित्य, बदलनेवाला जानो और भगवान को नित्य, सदा रहनेवाला मानो ।

संसार दुःखालय है । संसार शत्रु देकर तपाता है और मित्र देकर भी दुःख देता है । मित्र मिला और वह बीमार हो तो दुःख देगा । मित्र चिढ़ गया तो दुःख देगा । वह दुर्घटनाग्रस्त हो गया तो दुःख देगा । उसको कोई दुःख आया, मुसीबत आयी तो अपनेको दुःख होगा । मित्र शत्रु बन गया तो दुःख देगा । मित्र मर गया तो दुःख देगा । मर जाने के बाद उसकी याद दुःख देगी ।

संसार मित्र बनकर दुःख देता है और संसारी चीजें अपनी बनकर मजदूरी करवाती हैं । सँभालो, सँभालो, सँभालो... गहने सँभालो, गाड़ी सँभालो, बैंक बैलेन्स सँभालो... यह सँभालो, वह सँभालो । सँभाल-सँभालके वे चीजें तो यहीं रह जाती हैं, आखिर सँभालनेवाला ही मर जाता है । संसार को सँभाल-सँभालके छोड़ना है लेकिन अपने स्वार्थ के लिए सँभालते हैं तो बंधन होता है और भगवान की प्रीति के लिए, परोपकार के लिए सँभालते हैं तो मोक्षदायी हो जाता है क्योंकि उद्देश्य और आश्रय परमात्मा है । हम भी तो आश्रम सँभालते हैं, यह सँभालते हैं, वह सँभालते हैं लेकिन बंधन नहीं रहता । जब आप अपने स्वार्थ के लिए कर्म करते हैं, तब वह कर्म आपको विक्षेप देगा, चिंता देगा, पाप देगा, बंधन देगा और जन्म-मरण की खाई में धकेल देगा । अगर आप अपनी योग्यता को **'वासुदेवः सर्वम्'** की भावना से सबकी भलाई में लगा देते हैं और अपने कर्म का फल ईश्वर-अर्पण करके ईश्वर के आश्रित हो जाते हैं तो आपका अंतःकरण विशाल होता जाता है, बुद्धि में भगवान की दिव्य प्रेरणा आने लगती है । फिर आपको बड़ी-बड़ी किताबें पढ़के, बड़ी-बड़ी परीक्षाएँ पास करके मैनेजमेंट नहीं करना पड़ेगा, बड़े-बड़े ग्रंथ, पोथे रट-रटके फिर सत्संग नहीं करना पड़ेगा ।

आप यदि अहंकार का आश्रय छोड़कर भगवान का आश्रय लेके बोलते हैं, सर्वात्मा श्रीहरि के निमित्त बोलते हैं तो आपका बोलना सत्संग हो जायेगा, आपका करना सत्कर्म हो जायेगा, आपका जीवन चिन्मय जीवन होने लगेगा ।

परमात्मा की प्रीति के लिए, परमात्मा के आश्रय के लिए लोग भक्ति तो करते हैं लेकिन हृदय में महत्त्व भगवान का नहीं रखते, महत्त्व रखते हैं कि 'बेटा ठीक हो जाय, पैसा मिल जाय, मेरा यश हो जाय...।' तो आप परमात्मा का आश्रय नहीं ले रहे हैं, आप नश्वर चीजों के आश्रय में फँस रहे हैं । यदि आप नौकरी करते हैं, धंधा करते हैं, पत्नी के साथ बाजार में खरीददारी करते हैं या यात्रा करते हैं और आपके हृदय में भगवान का महत्त्व है तो आप भगवान के आश्रित हैं । मुख्य उद्देश्य और महत्त्व भगवान का है, कर्म को योग बनाने का है, धर्म के अनुसार चलने का है तो आपका उद्देश्य और आश्रय भगवान हो गये ।

अगर आपका उद्देश्य मजा लेने का है और आश्रय चोरी है तो आपका उद्देश्य और आश्रय नीच हो गया । किसीका उद्देश्य ऊँचा होता है, आश्रय छोटा होता है तो भी चल जाता है । जैसे - एक सेठ-सेठानी की श्रद्धालु बेटी थी । उसका उद्देश्य था भगवान के दर्शन करने का । तीन-चार ठग साधुवेश में उसके घर आये । सेठ-सेठानी

की अनुपस्थिति में उन्होंने उस युवती को कहा कि ''तू सब गहने आदि पहनकर हमारे साथ चल, हम तुझको भगवान के दर्शन करा देंगे।'' वह उनके साथ गयी तो ठगों ने उसके सारे गहने उतरवा लिये और कहा : ''इस कुएँ में देख, भगवान के दर्शन हो रहे हैं।'' वह ज्यों ही कुएँ में देखने के लिए झुकी, उसको धक्का मार दिया और भाग चले। तो हुआ क्या कि भगवान प्रकट हो गये और उस युवती को बचा लिया ! अब उसका आश्रय तो छोटा था लेकिन उद्देश्य भगवान थे तो कुछ भी नुकसान नहीं हुआ। यह घटना 'भक्तमाल' में विस्तार से आती है।

किसीका उद्देश्य और आश्रय दोनों ऊँचे होते हैं। जैसे - हनुमानजी लंका में गये तो उनका उद्देश्य रामजी की सेवा था और आश्रय रामनाम था, कर्मयोग था। हनुमानजी ने श्रीरामजी की दुहाई देकर रावण को समझाने की कोशिश की लेकिन रावण ने हेकड़ी नहीं छोड़ी, तब हनुमानजी ने लंका जला दी। उनका उद्देश्य था कि रावण अभी समझ जाय कि 'मैं तो रामजी का छोटा-सा दूत हूँ। जब मैं ऐसा हूँ तो मेरे स्वामीजी कैसे होंगे?' तो हनुमानजी का उद्देश्य अपने स्वामी का यश फैलाना था। उनके हृदय में रावण के प्रति द्वेष नहीं था और लंका को जलाकर 'मैं कुछ बड़ा हूँ' ऐसा दिखाने का भाव नहीं था। रावण भगवान रामजी की महिमा जाने और उसका भला हो ऐसा उद्देश्य था।

भगवान भी दूत को भेजते समय ऐसा बोलते हैं : ''जाओ, काम तो हमारा हो सीताजी को लाने का, लेकिन हित रावण का हो।''

काजु हमार तासु हित होई।

तो अपने कर्म में, अपनी बातचीत में, अपने लेन-देन में आप उद्देश्य और आश्रय ईश्वर का रख दो तो आपका जीवन सत्-चित्-आनंदस्वरूप परमात्मा से मिलानेवाला हो जायेगा। ☐

ब्रह्मवेत्ता गुरु की महिमा

भगवान श्रीकृष्ण सुदामाजी से कहते हैं : 'मित्र ! इस संसार में शरीर का कारण-जन्मदाता पिता प्रथम गुरु है। इसके बाद उपनयन-संस्कार करके सत्कर्मों की शिक्षा देनेवाला दूसरा गुरु है। वह मेरे ही समान पूज्य है। तदनंतर ज्ञानोपदेश करके परमात्मा को प्राप्त करानेवाला गुरु तो मेरा स्वरूप ही है।

मेरे प्यारे मित्र ! गुरु के स्वरूप में स्वयं मैं हूँ। इस जगत में वर्णाश्रमियों में जो लोग अपने गुरुदेव के उपदेशानुसार सहज में ही भवसागर पार कर लेते हैं, वे अपने स्वार्थ और परमार्थ के सच्चे जानकार हैं।

प्रिय मित्र ! मैं सबका आत्मा हूँ, सबके हृदय में अंतर्यामी रूप से विराजमान हूँ। मैं गृहस्थ के धर्म पंचमहायज्ञ आदि से, ब्रह्मचारी के धर्म उपनयन-वेदाध्ययन आदि से, वानप्रस्थी के धर्म तपस्या से और सब ओर से उपरत हो जाना- इस संन्यासी के धर्म से भी उतना संतुष्ट नहीं होता, जितना गुरुदेव की सेवा-शुश्रूषा से संतुष्ट होता हूँ।' **(श्रीमद् भागवत : १०.८०.३२-३४)**

प्रिय मित्र ! गुरुदेव की कृपा से ही मनुष्य परमात्मशांति का अधिकारी होता है और पूर्णता को प्राप्त करता है।

गुरोरनुग्रहेणैव पुमान् पूर्णः प्रशान्तये।

(श्रीमद् भागवत : १०.८०.४३)

भगवान श्रीकृष्ण के गुरुदेव सांदीपनिजी कहते हैं :

एतदेव हि सच्छिष्यैः कर्तव्यं गुरुनिष्कृतम्।
यद् वै विशुद्धभावेन सर्वार्थात्मार्पणं गुरौ॥

'गुरु के ऋण से मुक्त होने के लिए सत्‌शिष्यों का इतना ही कर्तव्य है कि वे विशुद्ध भाव से अपना सब कुछ और शरीर भी गुरुदेव की सेवा में समर्पित कर दें।' **(श्रीमद् भागवत : १०.८०.४१)** ☐

अभिमान हटाओ, विनय लाओ

- पूज्य बापूजी

हमारे मन की दो धाराएँ हैं - एक है अभिमान और दूसरी है विनय । अभिमान नासमझी से आता है और विनय समझदारी से आता है । नासमझ होकर हमलोग धन का अभिमान कर लेते हैं, विद्या का अभिमान कर लेते हैं, सत्ता का अभिमान कर लेते हैं, सौंदर्य का अभिमान कर लेते हैं कि 'हमारे जैसी सत्ता, सौंदर्य, विद्वत्ता, धन, परिवार किसीके पास नहीं ।' अरे, ऐसे करोड़ों-करोड़ों संसार में आकर चले गये और उनको जहाँ से मिला है उस परमात्मा का सौंदर्य देखें, उस परमात्मा की सत्ता देखें और उस परमात्मा का परिवार - विश्व देखें तो फिर हमें अभिमान किस बात का आयेगा ? हम जब नासमझ होते हैं, विराट का सौंदर्य नहीं देख पाते हैं, विराट का ज्ञान नहीं समझ पाते हैं, विराट की सत्ता नहीं समझ पाते हैं, विराट का धन नहीं देख पाते हैं तब एक बूँद से बने हुए अपने शरीर में थोड़ा बाहर का उधारा ज्ञान पढ़-पढ़के, सुन-सुनके, सीख-सीखके 'हमारे पास आ गया महाराज ! हम विद्वान हो गये, हम सत्ताधीश हो गये, हम कुछ बन गये...' - ऐसा कहते हुए उस अखण्ड से हमारी अपनी एक खण्डित धारा बना लेते हैं ।

जैसे पिता से पुत्र अलग हो जाय तो कहीं अलग मकान ले सकता है, कहीं अलग कारखाना डाल सकता है लेकिन उस अखण्ड परमात्मा से अलग होकर जीव कहाँ कारखाना डालेगा ? उस परमात्मा से अलग अभिमान करके हमलोग कहाँ विश्रांति पा सकते हैं ? विराट की समझ नहीं है, उस अनंत की समझ नहीं है इसलिए अभिमान आता है और ऐसा नहीं कि अभिमान पढ़े-लिखे को ही आता है या अनपढ़ को ही आता है या धनवान को ही आता है । अरे, धन नहीं होने का भी अभिमान होता है, त्यागी होने का भी अभिमान आ जाता है - 'हम कोई जैसे-तैसे नहीं, बारह साल से नमक नहीं खाते हैं, नंगे पैर चलते हैं... मैंने छः साल हो गये दाढ़ी नहीं बनायी... ।' तो यह अभिमान कुछ-न-कुछ रूप लेकर चित्त को बहिर्मुख करता है और उस चित्त को अंतर्मुख किये बिना अखण्ड शांति, अखण्ड ज्ञान नहीं मिलता, अखण्ड सत्ता का अनुभव नहीं होता ।

कोई भी बड़े-में-बड़ा विद्वान अगर थोड़ा-सा विचार करे तो उसका अभिमान टिक नहीं सकता । बड़े-में-बड़ा सत्ताधीश अगर थोड़ा-सा विचार करे तो उसकी सत्ता का अभिमान टिक नहीं सकता । बड़े-से-बड़ा रूपवान अगर थोड़ा-सा विचार करे तो उसके रूप का अभिमान टिक नहीं सकता । अविचार से अभिमान टिकता है और विचार से विनय आ जाता है ।

विद्या ददाति विनयम् ।

शत्रु आया है, शत्रु को अपने घर आया देखकर आप उठके खड़े हो गये, उसको बैठाया, पानी पिलाया, कुछ आदर-सत्कार किया, सिर झुकाकर नमस्कार किया तो शत्रु को आपने बड़प्पन दिया । इससे वह शत्रु बड़ा नहीं हुआ । आपने शत्रु को बड़ा बनाया तो आप बड़ा

बनानेवाले हुए । जो बड़ा बनाता है वह बड़े का भी बड़ा हुआ । तो विनय कोई दीनता नहीं लाता अपितु विवेकसंयुक्त विनय अपने चित्त से अहंकार को विदा करके आत्मप्रसाद लाता है ।

संत कबीरजी के ऊपर लांछन लगे और कबीरजी ने विनय से सुने । काशीनरेश कहता है कि ''महाराज ! अभी भी सुधर जाओ तो मैं आपको माफ कर सकता हूँ । पण्डे आज तक तो आपके खिलाफ बकवास करते थे लेकिन आज तो आपके एक हाथ में वेश्या का हाथ और दूसरे हाथ में शराब की बोतल देखकर मुझे कहना पड़ता है कि महाराज ! आप क्यों बिगड़ गये ? आपकी इज्जत का सवाल है । मेरे जैसा शिष्य, मेरे जैसा काशीनरेश आपके आगे मस्तक झुकाता है और फिर आप वेश्या का हाथ पकड़े हुए, शराब की बोतल हाथ में लिये हुए हैं !...''

कबीरजी बोलते हैं :

सुनो मेरे भाइयो ! सुनो मेरे मितवा !
कबीरो बिगड़ गयो रे ।
दही संग दूध बिगड़्यो, मक्खनरूप भयो रे ।
पारस संग भाई ! लोहा बिगड़्यो,
कंचनरूप भयो रे । कबीरो बिगड़ गयो रे ।
संतन संग दास कबीरो बिगड़्यो-२
संत कबीर भयो रे । कबीरो बिगड़ गयो रे ।

अपनी मान्यता का जो अहं था वह बिगड़ गया । अहं बिगड़ गया तो आदमी का चित्त परमात्मा में स्थिर हो जाता है । संत कबीरजी कह रहे हैं काशीनरेश की सभा में... इतने में कबीरजी के हाथ में जो बोतल थी दारू की, दारू तो थी नहीं दारू की जगह पानी भरा था, कबीरजी ने उसकी धार कर दी ।

काशीनरेश ने पूछा : ''महाराज ! यह क्या किया, दारू क्यों गिरा दी ?''

बोले : ''जगन्नाथपुरी में भगवान का प्रसाद बनानेवाले रसोइये के कपड़ों में आग लगी है, जरा मैं वह बुझा रहा हूँ ।''

''जगन्नाथपुरी और यहाँ... !''

बोले : ''हाँ ।''

आदमी भेजे गये तो देखा कि जगन्नाथपुरी में वास्तव में आग लगी थी और एकाएक कुछ गीला-गीला-सा हो गया और वह आदमी बच गया । फिर काशीनरेश को अपनी गलती महसूस हुई कि यह संत को बदनाम करने का वेश्या का कोई षड्यंत्र था या पण्डों की कुछ योजना थी । उसने कबीरजी से माफी माँगी लेकिन जिसके चित्त में अहंकार नहीं उसका अपमान या अनादर होने पर उसके चित्त में क्षोभ नहीं होता और उसका मान होने से उसके चित्त में अहंकार नहीं आता क्योंकि मान जो है वह मान देनेवाले के अधीन है । अब उसकी सज्जनता से उसने मान दिया; मान लेकर हम अभिमान करते हैं तो वह मान जिसकी सत्ता से उसने दिया उस परमात्मा की याद हम भूल गये, इसीलिए हमारा अभिमान अब दृढ़ हो जायेगा ।

अभिमान नासमझी से आता है । नासमझी हटाने के लिए प्रातःकाल उठकर प्रार्थना करो : 'हे भगवान ! तू मान देनेवालों को प्रेरणा करके मुझे मान दिलाता है । हे परमात्मा ! तू मेरा अहंकार मिटाने के लिए मेरा अपमान भी करवा देता है । तेरी बड़ी कृपा है । हजारों जन्मों से मैं चित्त की इस झंझटबाजी से कई माताओं के गर्भ में उलटा लटकता आया हूँ, कई पिताओं की गंदी इन्द्रियों से पसार होता आया हूँ । हे परमात्मा ! अब मुझे सद्बुद्धि दे ।'

सुबह की हुई प्रार्थना बड़ा सामर्थ्य लाती है । सुबह किया हुआ संकल्प, शुभ भावना जल्दी

सफल होती है। इससे आपके जीवन में विनय का सद्गुण बढ़ेगा, अहंकार दूर होगा और सत्संग का प्रकाश होगा।

मजे की बात तो यह है कि लोग अपना गुसलखाना (स्नानघर) गंदा नहीं रखना चाहते, अपना रसोईघर गंदा नहीं रखना चाहते, अपना प्रांगण गंदा नहीं रखना चाहते लेकिन जो दिल साथ में चलेगा उस दिल की गंदगी मिटाने के लिए क्या करना चाहिए, लोगों को कुछ पता ही नहीं। मरने के बाद जो अंतःकरण-मन साथ में चलेगा वह अभिमान की गंदगी से, अहंकार की गंदगी से, काम-विकार की गंदगी से भरा है उसका अगर ख्याल नहीं रखते हैं तो स्नानघर कितना भी चमकता हो महाराज! रसोईघर कितना भी चमकता हो तो इससे क्या होता है!

तो अपने चित्त को प्रसाद से भरने के लिए सत्संग करें और सुबह-सुबह परमात्मा का संग करने के लिए परमात्मा को ही प्रार्थना करें : 'हे भगवान! आज शुभ सत्संग देना। हे परमात्मा! आज जीवन में विनय देना। आज के दिन शरीर का कोई-न-कोई सदुपयोग हो। इस देह का, मन का, धन का, बुद्धि का तेरी इस सृष्टि को सजाने में उपयोग हो जाय। तेरी सेवा करने में इनका उपयोग हो जाय और हम तुझमें, अपने 'सोऽहम्' स्वभाव में विश्रांति पायें ऐसी तू कृपा करना।'

ऐसी यदि सुबह-सुबह आप प्रार्थना करेंगे तो महाराज! योगियों को गुफाओं में योग करने से जो मिलता है, तपस्वियों को घने जंगलों में तप करने से जो मिलता है, सतियों को सतीत्व सँभालने से जो मिलता है वही आपको देने को परमात्मा तत्पर है, उसके यहाँ कोई कमी नहीं। ❑

सफलता का रहस्य

(गतांक से आगे)

कोई आदमी ऊँचे पद पर बैठा है और गलत काम कर रहा है तो उसे गलत कामों से ऊँचाई मिली है, ऐसी बात नहीं है। उसके पूर्व के कोई-न-कोई आचरण अद्वैत ज्ञान की महक से युक्त हुए होंगे तभी उसको ऊँचाई मिली है। अभी गलत काम कर रहा है तो वह अवश्य नीचे आ जायेगा। फरेब, धोखाधड़ी, ईर्ष्या-घृणा करेगा तो नीचे आ जायेगा।

विद्यार्थी सफल कब होता है? जब निश्चिंत होकर पढ़ता है, निर्भीक होकर लिखता है तो सफल होता है। चिंतित-भयभीत होकर पढ़ता-लिखता है तो सफल नहीं होता। युद्ध में योद्धा तभी सफल होता है जब जाने-अनजाने देहाध्यास से परे हो जाता है। वक्ता वक्तृत्व में तब सफल होता है जब अनजाने में ही देह को, 'मैं-मेरे' को भूला हुआ होता है। तब उसके द्वारा सुंदर, सुहावनी वाणी निकलती है। अगर कोई प्रभाव डालने के लिए 'यह बोलूँगा... वह बोलूँगा...' ऐसा सोचकर पढ़-लिख और रटकर आ जाता है तो पढ़कर भी ठीक से नहीं बोल पाता। जो देहाध्यास को गला चुके हैं वे बिना पढ़े, बिना रटे जो बोलते हैं वह संतवाणी बन जाती है, सत्संग हो जाता है।

हम अंतर्यामी परमात्मा के प्रति जितने वफादार होते हैं, देहाध्यास से उपराम होते हैं, जगत की 'तू-तू... मैं-मैं' के आकर्षणों से रहित होते हैं, सहज और स्वाभाविक होते हैं उतने ही आंतरिक स्रोत से जुड़े हुए होते हैं और सफल होते हैं। हम जितना बाह्य परिस्थितियों के अधीन हो जाते हैं, आंतरिक स्रोत से संबंध छिन्न-भिन्न कर देते हैं उतने ही हमारे सुंदर-से-सुंदर आयोजन भी मिट्टी में मिल जाते हैं। हर क्षेत्र में सफल होना है तो सच्चाई, परोपकार, सरल स्वभाव का अवलम्बन लेकर व ईश्वर से एकता स्थापित करके ही संसार की सब चेष्टाएँ करो। अंतर्यामी से जब आप अपना संबंध बिगाड़ते हो तब दुनिया आपसे संबंध बिगाड़ती है।

लोग सोचते हैं कि 'फलाने आदमी ने सहकार दिया, फलाने मित्र ने साथ दिया तभी वह बड़ा हुआ, सफल हुआ।' वास्तव में जाने-अनजाने में फलानों की सहायता की अपेक्षा उसने उद्यम, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति व पराक्रम सहित ईश्वरीय संविधान में ज्यादा विश्वास किया, तभी फलाने-फलाने व्यक्ति उसकी सहायता करने में प्रवृत्त हुए व उसे हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त हुई। अगर वह ईश्वरीय संविधान से मुँह मोड़ ले और लोगों की सहायता पर निर्भर हो जाय तो वे ही लोग आखिरी मौके पर बहानेबाजी करके पिण्ड छुड़ा लेंगे, खिसक जायेंगे, उपराम हो जायेंगे यह दैवी विधान है।

भय, विघ्न, मुसीबत के समय भी उन्हें देनेवालों के प्रति मन में ईर्ष्या, घृणा, भय ला दिया तो जरूर असफल हो जाओगे। भय, विघ्न, मुसीबत, दुःखों के समय भी अंतर्यामी आत्मदेव के साथ जुड़ोगे तो मुसीबत डालनेवाले लोगों का स्वभाव बदल जायेगा, उनके विचार बदल जायेंगे, उनका आयोजन विफल हो जायेगा, असफल हो जायेगा। जितना आप अंतर्यामी से एक होते हो उतने आप सफल होते हो और विघ्न-बाधाओं से पार होते हो। जितने अंश में आप जगदीश्वर से मुँह मोड़ते हो और जगत की वस्तुओं पर एवं छल, कपट, द्वेष आदि गलत साधनों पर आधारित होते हो, उतने अंश में विफल हो जाते हो।

स्त्री वस्त्रालंकार आदि से सज-धजकर पुरुष को आकर्षित करना चाहती है तो थोड़ी देर के लिए पुरुष उससे आकर्षित हो जायेगा लेकिन पुरुष की शक्ति क्षीण होते ही उसके (पुरुष के) मन में उद्वेग आ जायेगा। अगर स्त्री पुरुष की रक्षा के लिए, पुरुष के कल्याण के लिए सहज, स्वाभाविक, पातिव्रतयुक्त जीवन बिताती है, सात्त्विक ढंग से जीती है तो पति के दिल में उसकी गहरी जगह बनती है।

ऐसे ही शिष्य भी गुरु को धन, वैभव, वस्तुएँ देकर आकर्षित करना चाहता है, दुनियावी चीजें देकर लाभ ले लेना चाहता है तो गुरु ज्यादा प्रसन्न नहीं होंगे लेकिन भक्तिभाव से सब प्रकार उनका शुभ चाहते हुए सेवा करता है तो गुरु के हृदय में भी उसके परम कल्याण का संकल्प स्फुरेगा।

(आश्रम से प्रकाशित पुस्तक 'जीवन विकास' से क्रमशः) □

विशेष सूचना

सूचित किया जाता है कि 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका की सदस्यता के नवीनीकरण के समय पुराना सदस्यता क्रमांक/रसीद क्रमांक एवं सदस्यता 'पुरानी' है - ऐसा लिखना अनिवार्य है। जिसकी रसीद में ये नहीं लिखे होंगे, उस सदस्य को नया सदस्य माना जायेगा।

चल-अचल

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

संत कबीरजी ने सार बात कही :

चलती चक्की देखके दिया कबीरा रोय ।
दो पाटन के बीच में साबित बचा ना कोय ॥
चक्की चले तो चालन दे तू काहे को रोय ।
लगा रहे जो कील से तो बाल न बाँका होय ॥

चक्की में गेहूँ डालो, बाजरा डालो तो पीस देती है लेकिन वह दाना पिसने से बच जाता है जो कील के साथ सटा रह जाता है, अबदल को छुए रहता है ।

यह बदलनेवाला जो चल रहा है, वह अचल के सहारे चल रहा है । जैसे बीच में कील होती है उसके आधार पर चक्की घूमती है, साइकिल या मोटर साइकिल का पहिया एक्सल पर घूमता है। एक्सल ज्यों-का-त्यों रहता है । पहिया जिस पर घूमता है, वह घूमने की क्रिया से रहित है । न घूमनेवाले पर ही घूमनेवाला घूमता है। ऐसे ही अचल पर ही चल चल रहा है, जैसे - अचल आत्मा के बल से बचपन बदल गया, दुःख बदल गया, सुख बदल गया, मन बदल गया, बुद्धि बदल गयी, अहं भी बदलता रहता है - कभी छोटा होता है, कभी बढ़ता है ।

जो अचल है वह असलियत है और जो चल है वह माया है । कोई दुःख आये तो समझ लेना यह चल है, सुख आये तो समझ लेना यह चल है, चिंता आये तो समझ लेना चल है, खुशी आये तो समझ लेना चल है। जो आया है वह सब चल है ।

अचल के बल से चल दिखता है। अचल सदा एकरस रहता है, चल चलता रहता है । तो दो तत्त्व हैं - प्रकृति 'चल' है और परमेश्वर आत्मा 'अचल' है। अचल में जो सुख है, ज्ञान है, सामर्थ्य है उसीसे चल चल रहा है। जो दिखता है वह चल है, अचल दिखता नहीं । जैसे मन दिखता है बुद्धि से, बुद्धि दिखती है विवेक से और विवेक दिखता है अचल आत्मा से। मेरा विवेक विकसित है कि अविकसित है यह भी दिखता है अचल आत्मा से ।

अचल से ही सब चल दिखेगा, सारे चल मिलकर अचल को नहीं देख सकते । अचल को बोलते हैं : **१ ओंकार सतिनामु करता पुरखु...** कर्ता-धर्ता वही है अचल । वह **अजूनी सैभं...** अयोनिज (अजन्मा) और स्वयंभू है । चल योनि (जन्म) में आता है, अचल नहीं आता। तो मिले कैसे ? बोले : **गुर प्रसादि ।** गुरुकृपा से मिलता है। चल के आदि में जो था, चल के समय में भी है, चल मर जाय फिर भी जो रहता है वह **सचु जुगादि...** युगों से अचल है ।

भगवान नारायण देवशयनी एकादशी से लेकर देवउठी एकादशी तक अचल परमात्मा में शांत हो जाते हैं। साधु-संत भी चतुर्मास में अचल में आने के लिए कुछ समय ध्यानस्थ होते हैं, एकांत में बिताते हैं। भगवान श्रीकृष्ण १३ साल अचल में रहे ।

आप **हरि ओ... म्...** इस प्रकार लम्बा उच्चारण करके थोड़ी देर शांत होते हैं तो आपका मन उतनी देर अचल में रहता है । थोड़े ही समय में लगता है कि तनावमुक्त हो गये, चिंतारहित हो गये - यह ध्यान का तरीका है ।

ज्ञान का तरीका है कि एक चल है, दूसरा अचल है । अचल आत्मा है और चल शरीर है, संसार है, मन है, बुद्धि है। चल कितना ही बदल गया, देखा अचल ने। सुख-दुःख को जाननेवाला भी अचल है। अगर इस **(शेष पृष्ठ १५ पर)**

गाथा खण्डहरों की

(परम पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

दादू दयाल महाराज बड़े प्रसिद्ध संत हो गये। उनके शिष्य थे निश्चलदासजी महाराज। निश्चलदासजी ने 'विचारसागर' ग्रंथ लिखा है। मेरे सद्गुरु लीलाशाह प्रभुजी भी दादू दयालजी के साहित्य से प्रभावित थे और हमारी परम्परा भी उन्हींसे जुड़ी हुई है।

जयपुर (राजस्थान) के पास आमेर है। अकबर के कहने से वहाँ की गद्दी पर राजा मानसिंह का राजतिलक हुआ था। विदेशी तत्त्व पिछले १६०० वर्षों से हिन्दुओं को तोड़कर उन्हें अपने सम्प्रदाय में लाने का एक ही तरीका अपनाते आ रहे हैं कि इनमें आपस में वर्ग-विग्रह हो। धर्मान्तरण करानेवालों ने आमेर के कुछ ब्राह्मणों को मोहरा बनाया और उनको दादूजी का विरोधी बना दिया। ब्राह्मण वास्तव में विरोधी नहीं थे, उन्हें मोहरा बनाया गया था।

एक ब्राह्मण की दो लड़कियाँ दादू महाराज की शिष्याएँ हो गयी थीं। उस ब्राह्मण को उत्तेजित करके सब विरोधी ब्राह्मण राजा मानसिंह के पास गये और बोले : ''अधर्म हो रहा है राजा साहब ! युवती लड़कियों को दादू महाराज ने अपने पास रख लिया है। हमारी कन्याओं को छुड़ाओ। बाप से छीनकर कन्याओं को, लड़कों को आश्रम में रखा है।''

अरे, छीनकर नहीं रखा है, लड़कों की बुद्धि, लड़कियों की बुद्धि जब शुद्ध होती है तो शुद्ध रास्ता पकड़ते हैं। महात्मा बुद्ध ने किसीके लड़के-लड़कियाँ नहीं छीने थे। महावीर स्वामी ने किसीके बच्चे-बच्चियाँ नहीं छीने थे। पूज्यपाद लीलाशाहजी भगवान ने आसुमल को नहीं छीना था, मैं अपनी गरज से गुरुजी के चरणों में गया तो मुझे फायदा हुआ है और उनका प्रसाद अब भी करोड़ों लोगों तक पहुँच रहा है। आसुमल से आसाराम बनाकर समाज को दे दिया उन महापुरुष ने। पूज्य लीलाशाह भगवान की जय हो !

उस समय दादूजी के विरोधी दल ने राजा मानसिंह को भड़काया कि 'आपका राजतिलक हुआ तो दूसरे साधु-संतों ने आकर आशीर्वाद दिया लेकिन दादू ने आकर न आपको आशीर्वाद दिया, न आपके लिए दो शब्द कहे और अपने आश्रम में सुंदर-सुंदर कन्याओं को रखा है।' दूसरी और भी हलकी बातें उन्होंने उन कन्याओं के बारे में कहीं।

'महाराज ! आपका अपयश हो रहा है और आप उनके लिए कुछ नहीं बोलते हैं ! वे न हिन्दू धर्म को मानते हैं, न मुसलमान धर्म को मानते हैं। आश्रम में उनका एक शिष्य मर गया तो उसको जंगल में रखवा दिया था। न उसका दाह-संस्कार किया, न जल-संस्कार किया, न अग्नि-संस्कार किया, न समाधि दी; चील, सियार, लोमड़ियाँ और कुत्ते उसको नोचते रहे। अपने शिष्य के लिए जो क्रूर है वह समाज के लिए, देश के लिए क्या हितकारी होगा और आपके लिए क्या हितकारी होगा ?'- ऐसी भड़कानेवाली बातें सुनकर राजा ने जाँच की तो पता चला कि बात तो सच है, अपने शिष्य का अग्नि-संस्कार भी नहीं किया। लेकिन राजा मानसिंह ने सोचा कि 'मैं संत के लिए कुछ भी दण्डनीति अपनाऊँगा तो संत के भक्तों और संत की उफ् मेरी तबाही कर सकती है और अगर इनको सांत्वना नहीं देता हूँ तो यह विद्रोह बढ़ता जायेगा और अकबर मेरी गद्दी छीन लेगा।'

राजा का ऐसा हाल हुआ मानो साँप ने छछूँदर पकड़ा। बुद्धिमान मानसिंह दादूजी के पास आये, बोले : ''महाराज ! दर्शन करने आया हूँ।''

मगर शंकास्पद नेत्रों से तो पता चल जाता है। संत ने कहा : ''दर्शन का तो निमित्त है, आप कुछ जानने को आये हो।''

''हाँ महाराज ! आपका एक शिष्य मर गया था तो उस साधु को आपने जंगल में फिकवा दिया, कोई विधि नहीं की ?''

''राजन् ! हमने विधि तो की थी लेकिन विधि छः प्रकार की होती है । एक तो अग्नि-संस्कार विधि होती है । दूसरी जल-समाधि दी जाती है । तीसरी है भू-समाधि । चौथी विधि है वायु-समाधि, जिसमें शरीर वायुदेव को समर्पित करके जंगल में रख दिया जाता है । पाँचवीं विधि होती है विरह-समाधि, जिसमें विरह-विरह में साधु का शरीर अदृश्य हो जाता है । जैसे - मीराबाई का हो गया । छठी विधि है ज्ञान-समाधि ।

मैंने चौथा संस्कार किया । मंत्र पढ़कर संकल्प करके उसको वनदेवता को, वायुदेवता को समर्पित कर दिया, पशु-पक्षियों के हवाले कर दिया । उसकी ऐसी ही इच्छा थी ।''

''महाराज ! आपकी यह बात सुनकर तो मुझे विश्वास हो गया । आप शिष्यों के प्रति बड़े क्रूर हैं ऐसा मेरे कानों में जहर डाल दिया गया था । कुछ लोग एक ब्राह्मण को भी भड़काकर मेरे पास ले आये थे । वह फूट-फूटके रो रहा था : 'मेरी दो सुंदर कन्याओं को महाराज ने रख लिया है ।' महाराज ! कन्याएँ हैं क्या ?''

बोले : ''हैं ।''

''सुंदर हैं ?''

''बहुत सुंदर हैं । वे जितनी बाहर से सुंदर हैं उससे ज्यादा भीतर से सुंदर व सूझबूझ की धनी हैं । उन्होंने संसार की नश्वरता जानी है और शाश्वत परमात्मा का शुद्ध अमृत उनको मिल रहा है । वासना और अहं से पार वे भगवत्प्रीति और भगवद्रस से सम्पन्न हो रही हैं ।''

''ठीक है महाराज ! लेकिन कृपा करें, नाराज न हों, मुझे उन कन्याओं से रूबरू करा दें ।''

महाराज ने कहा : ''जाओ, मेरी गैरहाजिरी में कन्याओं से मिलो, मैं रहूँगा तो कन्याओं से पूछने में आपको संकोच होगा ।''

राजा एकांत में कन्याओं से मिले और बोले : ''तुम इतनी सुंदर हो, मैं तुम्हारा विवाह बड़े धनाढ्यों या राजकुमारों से करवा दूँगा ।''

और 'यह कर दूँगा, वह कर दूँगा...' - लम्बी-चौड़ी बातचीत हुई । उन सुकन्याओं ने कहा : ''राजन् ! शाण्डिली के लिए लोगों ने इतना जहर उगला, उनके गुरु को बदनाम किया फिर भी शाण्डिली और उनके गुरु डटे रहे । शबरी भीलन के लिए मतंग ऋषि को बदनाम किया गया, शबरी को भी खूब बदनाम किया गया तो भी वे डटे रहे । अभी दुनिया उनके आगे सिर झुकाती है । गार्गी भी आजीवन अविवाहित रहीं और लोग उनके लिए भी बकते रहे । अभी लोग उनको पूजते हैं । हमको लोग पूजें या हमारे गुरु को पूजें ऐसी गुरुजी की भी इच्छा नहीं और हमारी भी इच्छा नहीं है लेकिन हम संसार की वासना और अहंता बढ़ाने के रास्ते को त्यागकर भगवान में अपनी अहंता विलीन करने के, भक्ति के रास्ते जा रही हैं तो समाज के नासमझ लोगों को पीड़ा होती है लेकिन समझदार लोग तो मेरे गुरुजी को प्रणाम कर रहे हैं । समझदार लोग प्रणाम न भी करें तो भी हमारे गुरुजी को घाटा नहीं और हमको भी घाटा नहीं राजन् !''

कन्याओं की सत्संग की बातें सुनकर राजा का चित्त द्रवित हो गया और सोचने लगा, 'धिक्कार है उन निंदकों, बहकानेवालों को और धिक्कार है मेरी अल्प मति को कि इन निर्दोष कन्याओं और संत के लिए मैं शंकाशील हुआ ।'

बुद्धिमान राजा मानसिंह बोले : ''देवियो ! मुझे क्षमा करना ।''

''राजन् ! हमसे क्या क्षमा माँगते हो ? हमारे जो तारणहार हैं उन गुरुदेव के पास जाकर आप प्रायश्चित्त के दो शब्द कहेंगे न, तो गुरु की कृपा आपके राज्य को समृद्ध करेगी । राज्यसत्ता और धर्मसत्ता आपस में टकराये तो दुर्जनों का मनोरथ फलता है लेकिन राज्यसत्ता व धर्मसत्ता में सामंजस्य हो तो दुर्जन लोगों के छक्के छूट जाते हैं । महाराज ! हमारे गुरुदेव के साथ आप संवादिता स्थापित करिये ताकि आपकी राज्यसत्ता को धर्मसत्ता की दुआ मिले

और धर्मसत्ता की सुरक्षा राज्यसत्ता से हो।''

राजा को कन्याओं की दूरदर्शिता पर और भी अहोभाव हुआ कि केवल अपना व गुरुजी के आश्रम का भला नहीं, पूरे राज्य और मानवता का भला सोचने की अक्ल संतों के संग से इन कन्याओं में आयी है।

''मैं संत दादूजी को और आपको - दोनों को प्रणाम करता हूँ।''

मानसिंह ने दादू महाराज से क्षमायाचना की। दादूजी बोले : ''राजन् ! इसमें आपका कसूर नहीं है, यह कलियुग है और धर्मान्तरणवाले चाहते हैं कि हिन्दू-हिन्दू आपस में लड़ें, समाज में हिन्दू धर्म के लिए नफरत पैदा हो ताकि हमारे धर्मान्तरण के कार्य का फैलावा हो और हम देश पर कब्जा करें। इसलिए राजन् ! आप सावधान रहिये और ऐसी-वैसी बातों में न आइये।''

राजा ने आकर ब्राह्मणों को कहा : ''हम तो संत के पास जाकर देखके आये हैं। तुमलोग उन पर जो आरोप लगाते हो, ऐसा तो कुछ नहीं है।''

ब्राह्मणों ने सोचा कि 'दादू महाराज के पास कोई जादू है।' (क्रमशः) □

शरीर का तीसरा उपस्तंभ : ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य शरीर का तीसरा उपस्तंभ है। (पहला उपस्तंभ आहार व दूसरा निद्रा है, जिनका वर्णन पिछले अंकों में किया गया है।) शरीर, मन, बुद्धि व इन्द्रियों को आहार से पुष्टि, निद्रा से विश्रांति व ब्रह्मचर्य से बल की प्राप्ति होती है।

ब्रह्मचर्यं परं बलम्।

ब्रह्मचर्य का अर्थ :

कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते ॥

'सर्व अवस्थाओं में मन, वचन और कर्म तीनों से मैथुन का सदैव त्याग हो, उसे ब्रह्मचर्य कहते हैं।' **(याज्ञवल्क्य संहिता)**

ब्रह्मचर्य से शरीर को धारण करनेवाली सप्तम धातु शुक्र की रक्षा होती है। शुक्रसम्पन्न व्यक्ति स्वस्थ, बलवान, बुद्धिमान व दीर्घायुषी होते हैं। वे कुशाग्र व निर्मल बुद्धि, तीव्र स्मरणशक्ति, उत्तम निर्णयशक्ति, विशाल संकल्पशक्ति, दृढ़ निश्चय, धैर्य, समझ व सद्‌विचारों से सम्पन्न तथा आनंदवान होते हैं। वृद्धावस्था तक उनकी सभी इन्द्रियाँ, दाँत, केश व दृष्टि सुदृढ़ रहती है। रोग सहसा उनके पास नहीं आते। क्वचित् आ भी जायें तो अल्प उपचारों से शीघ्र ही ठीक हो जाते हैं।

भगवान धन्वंतरि ने ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन करते हुए कहा है :

मृत्युव्याधिजरानाशि पीयूषं परमौषधम् ।
सौख्यमूलं ब्रह्मचर्यं सत्यमेव वदाम्यहम् ॥

'अकाल मृत्यु, अकाल वृद्धत्व, दुःख, रोग आदि का नाश करने के सभी उपायों में ब्रह्मचर्य का पालन सर्वश्रेष्ठ उपाय है। यह अमृत के समान सभी सुखों का मूल है यह मैं सत्य कहता हूँ।'

जैसे दही में समाविष्ट मक्खन का अंश मंथन प्रक्रिया से दही से अलग हो जाता है, वैसे ही शरीर के प्रत्येक कण में समाहित सप्त धातुओं का सारस्वरूप परमोत्कृष्ट ओज मैथुन प्रक्रिया से शरीर से अलग हो जाता है। ओजक्षय से व्यक्ति असार, दुर्बल, रोगग्रस्त, दुःखी, भयभीत, क्रोधी व चिंतित होता है।

शुक्रक्षय के लक्षण (चरक संहिता) : शुक्र के क्षय होने पर व्यक्ति में दुर्बलता, मुख का सूखना, शरीर में पीलापन, शरीर व इन्द्रियों में शिथिलता (अकार्यक्षमता), अल्प श्रम से थकावट व नपुंसकता ये लक्षण उत्पन्न होते हैं।

अति मैथुन से होनेवाली व्याधियाँ : ज्वर (बुखार), श्वास, खाँसी, क्षयरोग, पाण्डु, दुर्बलता, उदरशूल व आक्षेपक (Convulsions-मस्तिष्क के असंतुलन से आनेवाली खेंच) आदि।

ब्रह्मचर्य-रक्षा के उपाय :

ब्रह्मचर्य-पालन का दृढ़ शुभसंकल्प, पवित्र, सादा रहन-सहन, सात्त्विक, ताजा अल्पाहार, शुद्ध वायु-सेवन, सूर्यस्नान, व्रत-उपवास, योगासन, प्राणायाम, ॐकार का दीर्घ उच्चारण, **'ॐ अर्यमायै नमः'** मंत्र का पावन जप, शास्त्राध्ययन, सतत श्रेष्ठ कार्यों में रत रहना, संयमी व सदाचारी व्यक्तियों का संग, रात को जल्दी सोकर ब्राह्ममुहूर्त में उठना, प्रातः शीतल जल से स्नान, प्रातः-सायं शीतल जल से जननेन्द्रिय-स्नान, कौपीन धारण, निर्व्यसनता, कुदृश्य-कुश्रवण-कुसंगति का त्याग, पुरुषों के लिए परस्त्री के प्रति मातृभाव, स्त्रियों के लिए परपुरुष के प्रति पितृ या भ्रातृ भाव - इन उपायों से ब्रह्मचर्य की रक्षा होती है। स्त्रियों के लिए परपुरुष के साथ एकांत में बैठना, गुप्त वार्तालाप करना, स्वच्छंदता से घूमना, भड़कीले वस्त्र पहनना, कामोद्दीपक शृंगार करके घूमना - ये ब्रह्मचर्य-पालन में बाधक हैं। जितना धर्ममय, परोपकार-परायण व साधनामय जीवन, उतनी ही देहासक्ति क्षीण होने से ब्रह्मचर्य का पालन सहज-स्वाभाविक रूप से हो जाता है। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य आत्मानुभूति में परम आवश्यक है।

गार्हस्थ्य ब्रह्मचर्य :

श्री मनु महाराज ने गृहस्थाश्रम में ब्रह्मचर्य की व्याख्या इस प्रकार की है :

ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः ।
चतुर्भिरितरैः सार्द्धं अहोभिः सद्विगर्हितै ॥

अपनी धर्मपत्नी के साथ केवल ऋतुकाल में समागम करना, इसे 'गार्हस्थ्य ब्रह्मचर्य' कहते हैं।

रजोदर्शन के प्रथम दिन से सोलहवें दिन तक ऋतुकाल माना जाता है। इसमें मासिक धर्म की चार रात्रियाँ तथा ग्यारहवीं व तेरहवीं रात्रि निषिद्ध है। शेष दस रात्रियों में से दो सुयोग्य रात्रियों में स्वस्त्री-गमन करनेवाला व्यक्ति गृहस्थ ब्रह्मचारी है।

श्री सुश्रुताचार्यजी ने इस गार्हस्थ्य ब्रह्मचर्य की प्रशंसा करते हुए कहा है :

आयुष्मन्तो मन्दजरा वपुर्वर्णबलान्विताः ।
स्थिरोपचितमांसाश्च भवन्ति स्त्रीषु संयताः ॥

'स्त्रीप्रसंग में संयमी पुरुष आयुष्मान व देर से वृद्ध होनेवाले होते हैं। उनका शरीर शोभायमान, वर्ण और बल से युक्त तथा स्थिर व मजबूत मांसपेशियोंवाला होता है।'

(सुश्रुत संहिता, चिकित्सास्थानम् : २४.११२)

इस प्रकार आहार, निद्रा व ब्रह्मचर्य का युक्तिपूर्वक सेवन व्यक्ति को स्वस्थ, सुखी व सम्मानित जीवन की प्राप्ति में सहायक होता है। ❑

सं|स्था||स|मा|चा|र

('ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि)

२५ से २८ दिसम्बर तक **सूरत (गुज.)** में सत्संग-समारोह सम्पन्न हुआ । इस बार सूरत में उमड़े साधकों के सैलाब ने तो देखनेवालों को आश्चर्य में डाल दिया । रास्ते के दुतर्फा श्रद्धालु पूज्यश्री के इंतजार में कतारें बनाये खड़े थे । पुष्पवर्षा के बीच जब बापूजी का आश्रम में आगमन हुआ तो सत्संग-मंडप में असंख्य लोग अपने प्यारे गुरुदेव के दीदार के लिए पलकें बिछाये बैठे थे । दुःख, रोग से त्रस्त मानव को सुख व आरोग्यता के रहस्य से अवगत कराते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''हर्ष में शोक का निवास रहता है, राग में द्वेष का निवास रहता है, भोग में रोग का निवास रहता है, सुख में दुःख का निवास रहता है लेकिन भगवद्रस में दुःखहारिणी कृपा रहती है । भगवद्-जनों के दर्शन में आनंद-उल्लास होता है, परमात्मरस होता है ।''

पोषक, स्वास्थ्यप्रद आहार की युक्ति बताते हुए बापूजी ने कहा : ''आप बच्चों को बाजारू बासी आटा मत खिलाओ । अनाज पीसने के सात दिन बाद आटे की शक्ति कम होने लगती है । ५ किलो गेहूँ, १ किलो मक्का, १ किलो जौ तथा सर्दी के दिन हैं तब तक उसमें १ किलो सोयाबीन भी मिला दो । इस मिश्रण का आटा पौष्टिक होता है । इसकी रोटी मैंने खाकर देखी है और इसका परिणाम भी मैंने देखा है । यह शक्तिशाली, पौष्टिक आटा बच्चों को खिलाओ और बच्चों के माता-पिता भी खायें । स्वस्थ रहो, सुखी रहो, सद्गुणसम्पन्न रहो ।''

३० व ३१ दिसम्बर को **डभोई (गुज.)** में सत्संग हुआ । विचारों की अपार शक्ति से परिचित कराते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''जिन लोगों को सत्संग की कद्र है उनका तो भला हो जायेगा लेकिन जिनको सत्संग की कद्र नहीं है और सुविचार की जगह कुविचार को ही पकड़कर बैठे रहते हैं वे अपना व दूसरों का बहुत अहित करते हैं । अभी जो डभोई में इतने लोग इकट्ठे हुए हैं वह समितिवालों को सत्संग-आयोजन करने का सुविचार आया तभी न ! सत्संग कराने का एक सुविचार लाखों आदमियों को सुख-शांति दे देता है और झगड़े करने-कराने का कुविचार अशांति पैदा कर देता है, हड़ताल पैदा कर देता है ।

अब्दुल लतीफ नामक विद्यार्थी के एक कुविचार ने पाकिस्तान का निर्माण करा दिया, करोड़ों लोग बेघर हुए, लाखों के साथ अत्याचार हुए, हजारों मरे । वह एक कुविचार अब भी दुनिया के गले की हड्डी बना हुआ है । अगर एक कुविचार इतना सब करा सकता है तो एक सुविचार सज्जनता, सत्संग और भगवान की तरफ लगा दे इसमें क्या आश्चर्य है ?''

३१ दिसम्बर को डभोई में पूज्यश्री के सान्निध्य में विशाल भंडारे का आयोजन हुआ । भंडारे में गरीबों को कुर्ते, साड़ियाँ, बच्चों के कपड़े, टोपियाँ तथा खजूर, मिठाई आदि खाद्य सामग्री का वितरण किया गया । सभीको भोजन-प्रसाद से तृप्त कर नकद आर्थिक सहायता भी दी गयी ।

३१ जनवरी को ही पूज्यश्री का **अमदावाद आश्रम** में आगमन हुआ । परम हितैषी सद्गुरु हमें जगाने का एक भी मौका नहीं चूकते । यहाँ पर साधकों के हृदय में विवेक-वैराग्य की लौ जलाते हुए पूज्यश्री की सहज वाणी प्रस्फुटित हो उठी । उन्होंने कहा : ''ईश्वर के सिवाय कौन-सी चीज हमारी रहेगी, विचार करके देखो । किसके लिए कपट करना, किसके लिए द्वेष करना, किसके लिए पापकर्म करना ? क्यों दोषारोपण करना ? सब अपने-अपने प्रारब्ध और प्राकृतिक स्वभाव के अनुरूप जीते हैं बेचारे । **सबका मंगल... सबका भला...**''

१० जनवरी को पूनम-दर्शन **दिल्ली**वासियों की झोली में रहा । सनातन संस्कृति के प्रति जनसामान्य में आत्मीयता बढ़ाते हुए बापूजी बोले : ''धार्मिक जीवन, संस्कृत जीवन, भोग की विकृति से बचाकर समाधिस्थ और प्रकृतिस्थ जीवन- इन सब से ऊपर उठाकर प्रारब्ध से भी आगे पहुँचाके जीवात्मा को परमात्मा से मिलाने की व्यवस्था करती है संस्कृत भाषा व अपनी संस्कृति ।''

पूज्य बापूजी ने यहाँ संस्कृत भाषा की विलक्षणता पर प्रकाश डालते हुए कहा : ''संस्कार

जिससे मिलते हैं वह है वैदिक भाषा, संस्कृत भाषा। उसको 'देवभाषा' भी कहा गया है। इसकी लिपि 'देवनागरी' है। देवभाषा में यह बड़ी विलक्षणता है कि इसमें साधारणतया धातुओं के १८० रूप बनते हैं। अन्य भाषाओं में तो एकवचन व बहुवचन है परंतु इसमें एकवचन, द्विवचन व बहुवचन है। इस भाषा में लिंग भी तीन हैं। यह विश्व की सबसे समृद्ध भाषा कही गयी है।''

११ से १४ जनवरी तक **उत्तरायण महोत्सव** हर वर्ष की तरह अमदावाद आश्रम में आयोजित हुआ। इस बार उत्तरायण पर्व की पूर्व वेला में दिल्ली में पूज्य बापूजी का कार्यक्रम आयोजित होने पर भी अमदावाद में जनमेदनी कम न हुई। यहाँ असंख्य लोगों ने पूज्यश्री के सत्संग में उत्तरायण पर्व का आध्यात्मिक, वैदिक एवं स्वास्थ्य के संदर्भ में महत्त्व जाना तथा भगवान सूर्य को इस पर्व पर अर्घ्य अर्पण किया। सूर्य की किरणों के द्वारा विभिन्न रोगों से कैसे बचाव होता है इसका भी मार्गदर्शन पाया। उत्तरायण के दिन देश-विदेश से आये असंख्य लोगों ने एक साथ वैदिक विधि-विधान के अनुसार प्रातःकाल में वैदिक उबटन से स्नान किया तथा पंचगव्य का पान किया।

पूज्यश्री के सत्संग-दर्शन का लाभ जीवंत प्रसारण, वेब-साईट तथा विडियो कॉन्फरेंसिंग के द्वारा विश्व के विभिन्न देशों के लोगों ने लिया।

उत्तरायण अर्थात् पतंगोत्सव के दिन तत्त्वदर्शी संत पूज्य बापूजी ने भक्तजनों को ज्ञान-ध्यान की उड़ान का अनुभव कराया। पूज्यश्री ने वासनारहित जीवन की महत्ता पर जोर दिया : ''कुसंग का त्याग करने से संतों का संग फलता है। मन की चंचलता इतनी दुःखदायी नहीं है जितना छल-छिद्र, कपट एवं वासनावाला व्यवहार दुःखदायी है। एकाग्रता बहुत अच्छी है लेकिन एकाग्रता की ऊँचाई पर पहुँचे हिरण्यकशिपु, रावण को मन में जगत के भोग की वासना होने से आखिर तो सब छोड़कर दुःखी होकर मरना पड़ा। शबरी के पास बाहर का वैभव नहीं था लेकिन मतंग ऋषि के प्रति वफादारी ने उसे आत्मवैभव से सम्पन्न कर दिया। गद्दार इस महिमा को क्या जानें !''

संत चरणदासजी की जन्मस्थली व संत सुंदरदासजी की साधनास्थली रह चुकी **अलवर नगरी (राज.)** के निवासियों को **१७ व १८ जनवरी** को पूज्य बापूजी के सत्संग का सुअवसर प्राप्त हुआ। ११ वर्षों की प्रदीर्घ प्रतीक्षा के उपरांत मिले इस स्वर्णिम अवसर का लाभ उठाने अलवर व आस-पास के भक्त बड़ी संख्या में उमड़ पड़े। पूज्यश्री के इस पुनरागमन से अलवरवासी धन्यता का अनुभव कर रहे थे। यहाँ के भक्तों को भवाटवी से बचकर परमार्थ की राह पर चलने की प्रेरणा देते हुए पूज्य बापूजी बोले : ''सुख का लालच ही मनुष्य को इस आदि-अंतरहित संसार में भटकाता है पर सत्संग से मनुष्य परम पद की खोज के लिए अग्रसर होता है।''

१८ व १९ जनवरी के २ सत्रों का सत्संग खैरथल के पास स्थित **वल्लभग्राम (राज.)** के भाग्यशाली भक्तों को प्राप्त हुआ। पूज्य बापूजी के सद्गुरुदेव भगवत्पाद श्री श्री लीलाशाहजी महाराज का दीर्घ सान्निध्य प्राप्त कर चुकी इस परम पावन धरा पर बापूजी का आगमन पवित्र गुरु-शिष्य परम्परा की यादें ताजा करनेवाला रहा।

२० जनवरी को **आगरा आश्रम (उ.प्र.)** में एकांतवास हेतु पधारे पूज्य बापूजी ने यहाँ बड़ी संख्या में उमड़े भक्तों को देखकर **२० जनवरी (दोपहर)** का सत्संग-सत्र घोषित किया। अचानक घोषित हुए इस कार्यक्रम में भी श्रद्धालुओं का दरिया उमड़ पड़ा और आयोजकों की प्रार्थना पर **२१ जनवरी** का भी एक सत्र पूज्यश्री ने प्रदान किया। यहाँ के गुरुकुल के विद्यार्थियों को सुदृढ़ स्वास्थ्य का प्रयोग बताते हुए बापूजी बोले : ''रात्रि को भिगोया हुआ एक बादाम सुबह छिलका उतारके पीसकर अथवा खूब चबा-चबाकर खाने से विशेष शक्ति प्राप्त होती है।''

यहाँ के विद्यार्थियों के लिए थोक में बादाम खरीदकर नाश्ते में दिलाने की व्यवस्था करने के आदेश भी बापूजी ने दिये। अपनी संस्कृति के प्रति जागरूक करते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''जिस देश

में अपनी भाषा, संस्कृति व संतों का आदर नहीं होता, वहाँ के लोगों के आचार-विचार अशांतिमय और पिशाचवत् हो जाते हैं।''

२३ जनवरी को एक ही दिन **इगलास, हाथरस व अलीगढ़ (उ.प्र.)** के पुण्यात्मा सज्जनों ने सत्संग-प्रसाद पाया। सत्संग घोषित होने की खबर चंद घण्टे पहले मिली परंतु इतने कम समय में तय हुए इन कार्यक्रमों की खबर वायुवेग से फैल गयी और अपने प्यारे गुरुदेव के दर्शन करने भक्तों की भीड़ उमड़ पड़ी। **२४ जनवरी** की सुबह **करसुआ आश्रम (अलीगढ़-उ.प्र.)** में उस क्षेत्र के श्रद्धालुओं को सत्संग का अवसर प्राप्त हुआ।

२४ से २६ जनवरी तक नंदनंदन भगवान श्रीकृष्ण की लीलास्थली **वृंदावन (उ.प्र.)** में सत्संग सम्पन्न हुआ। वृंदावन नगरी व पूज्य बापूजी का सत्संग - ऐसे दुर्लभ सुयोग का लाभ उठाने उत्तर प्रदेश सहित दिल्ली, राजस्थान व भारत के अन्य उत्तरी क्षेत्रों के भक्त भी उमड़ पड़े। कृष्णनगरी में ज्ञान-भक्ति-प्रेम की वर्षा में झूम उठे मथुरा व वृंदावन निवासी और वैष्णव साधु-संत !

प्रेमनगरी में प्रेम की परिभाषा व्यक्त करते हुए पूज्यश्री बोले : ''भगवान अगर हमसे भिन्न हैं तो वे सर्वत्र कैसे ? और हमसे बाहर हैं तो व्यापक कैसे ? भगवान तो हमारे सहित सबमें व्याप्त हैं, हमारे अपने हैं।''

२६ जनवरी (सोमवती अमावस्या) की शाम व **२७ जनवरी** को **एटा (उ.प्र.)** में सत्संग-अमृत की सरिता प्रवाहित हुई। सोमवती अमावस्या, रविवारी सप्तमी, मंगलवारी चतुर्थी और बुधवारी अष्टमी इन तिथियों की महिमा बताते हुए पूज्यश्री ने कहा कि इन तिथियों पर किये गये जप, तप, मौन, ध्यान का प्रभाव अक्षय होता है। □

अखिल भारतीय बाल संस्कार सम्मेलन

जीवन में संस्कार धन से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। धन का संबंध केवल हयात हैं तब तक है परंतु संस्कारों का महत्त्व मरने के बाद भी है। इसलिए बाल्यकाल से ही उत्तम संस्कारों का सिंचन बहुत आवश्यक है। इसी उद्देश्य से लगभग १० वर्ष पूर्व 'बाल संस्कार केन्द्र' रूपी बीज बोया गया था, जो आज एक विशाल वटवृक्ष के रूप में विकसित हुआ है। इसका और भी विकास करने हेतु उत्तरायण के अवसर पर अखिल भारतीय सम्मेलन हुआ।

इसमें हुए चर्चासत्र में जो विचार अभिव्यक्त हुए उनमें से दो विचार यहाँ दिये जा रहे हैं :

* हम ध्यान रखें कि एक बार 'बाल संस्कार केन्द्र' रूपी पौधा लगा दिया तो वह फिर सूखने न पाये। बच्चे कभी कम होंगे कभी ज्यादा, इससे विचलित न हों, अपनी लगन बनाये रखें। जैसे कोई प्रणाम करे या न करे, जल चढ़ाये या न चढ़ाये, सूर्यदेव तो नियम से उगते हैं और गतिमान होते हैं, ऐसे ही हमारे केन्द्र भी होने चाहिए।

* कोई समस्या हो तो नये केन्द्र-शिक्षक पुराने केन्द्र-शिक्षकों से मार्गदर्शन, मदद ले सकते हैं; मुख्यालय से भी सम्पर्क कर सकते हैं। क्षेत्रिय शिक्षक मिलकर 'बाल संस्कार शिक्षक गोष्ठियों' का आयोजन कर सकते हैं, जिसमें केन्द्रों के विकास एवं विस्तार पर विचार-विमर्श व सहयोग हो। □

'बाल संस्कार केन्द्र' एवं 'विद्यार्थी उज्ज्वल भविष्य निर्माण शिविर' प्रशिक्षण

११ से १४ जनवरी तक हुए इस प्रशिक्षण में बाल संस्कार केन्द्र, विद्यालयों में 'योग व उच्च संस्कार शिक्षा कार्यक्रम', विद्यार्थी उज्ज्वल भविष्य निर्माण शिविर, सम्पर्क सूत्र धारा का गठन, मातृ-पितृ पूजन दिवस का आयोजन, 'संत अवतरण' नोटबुक का वितरण आदि विषयों पर भारत भर से आये हुए केन्द्र-शिक्षकों को मार्गदर्शन दिया गया।

'ऋषि प्रसाद' वार्षिक सम्मेलन

'ऋषि प्रसाद' के माध्यम से १८ वर्ष पूर्व अवतरित दिव्य ज्ञानगंगा आज विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में ज्ञान-प्रसाद पहुँचा रही है। इसके विस्तार एवं संवर्धन हेतु उत्तरायण पर्व पर इस वर्ष भी 'ऋषि प्रसाद वार्षिक सम्मेलन' सम्पन्न हुआ। इसमें उपस्थित 'ऋषि प्रसाद' के पुण्यात्माओं ने जो विचार प्रकट किये, प्रस्तुत हैं उनमें से कुछ विचार :

* 'ऋषि प्रसाद' सेवा हेतु विशेष पढ़ा-लिखा होने की, किसी स्थान, परिस्थिति या समय की जरूरत नहीं है। यह हर किसीके द्वारा, हर समय, चालू व्यवहार में की जा सकती है। यह सेवा हमारे लिए कर्म को ही पूजा बनाकर व्यवहार में भक्ति, समता लाने का सुंदर माध्यम बनी हुई है।

* शास्त्र कहते हैं : **दानं केवलं कलियुगे।** परंतु दान कई प्रकार का होता है। उनमें सबसे श्रेष्ठ व शाश्वत दान है 'सत्संग दान', जो जीवन की हर स्थिति में अभय देता है और मृत्यु के बाद भी साथ निभाता है। इसीको समाज तक पहुँचाने का अवसर हमें 'ऋषि प्रसाद' के द्वारा मिल रहा है।

* शादी, उत्सव जैसे कार्यक्रमों में हम सुखमय जीवन जीने की कला सिखानेवाली 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका की सदस्यता का लाभ उपस्थित लोगों को दिलाने का प्रयास करते हैं। इससे हमें बहुत आत्मसंतोष मिलता है क्योंकि इससे व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में निखार आता है। सभी पुण्यात्मा ऐसा प्रयास करें।

* आत्मभाव दृढ़ करने हेतु श्वासोच्छ्वास के साथ 'अजपा गायत्री' जपी जाती है परंतु हमारा यह अनुभव है कि 'ऋषि प्रसाद' का दैवी कार्य हमें आत्मसुख, आत्मशांति, आत्मसंतोष, आत्मप्रीति का अनुभव कराता है, इसमें सतत परहित का भाव जो बना रहता है !

* जिस ज्ञान से हम आनंद व शांति पा रहे हैं वह सम्पूर्ण समाज में व्याप्त हो ऐसा प्रयास करना हमारा सामाजिक कर्तव्य है। 'ऋषि प्रसाद' जन-जन तक पहुँचाते समय हृदय में समाज-ऋण से उऋण होने का, परहित का संतोष होता है। ❑

जीवन-रक्षक बनी 'ऋषि प्रसाद'

१२ सितम्बर १९९९ को मैं व मेरा बेटा कार से पठानकोट जा रहे थे। बेटा कार चला रहा था व मैं पीछे की सीट पर बैठे 'ऋषि प्रसाद' पढ़ रहा था। कपूरथला से ४७-४८ कि.मी. दूर भोगपुर के आगे रेलवे ब्रिज है। जब कार वह पुल पार कर रही थी उसी समय लड़के की आँखों के सामने अँधेरा छा गया और कार ब्रिज की रेलिंग से टकराकर ८-१० पलटियाँ खाते हुए पुल से ३०-३५ फुट नीचे गिर गयी। मैं उस समय 'ऋषि प्रसाद' के आखिरी पेज की अंतिम लाइन पढ़ रहा था। जैसे ही कार नीचे गिरी, मेरी आँखों के आगे अँधेरा-सा छाने लगा। उस समय मैंने क्या देखा कि एक सफेद कपड़ोंवाले बाबा हमारे सामने खड़े हैं। वे थे हमारे प्यारे बापूजी, संकट की घड़ी में बचानेवाले हमारे तारणहार गुरुदेव ! मैंने इसके पहले कभी उनके प्रत्यक्ष दर्शन भी नहीं किये थे। केवल 'ऋषि प्रसाद' के माध्यम से ही पहचानता था। अगर बापूजी ने उस समय हमारी रक्षा न की होती तो हमारा क्या हाल होता !

मदद करने हेतु कुछ लोग आये और उन्होंने गाड़ी का काँच तोड़कर हमें बाहर निकाला। कार की ऐसी हालत हो गयी थी कि उसका रहा कुछ नहीं और हमको हुआ कुछ नहीं ! हम घर आये, हमने न कोई इंजेक्शन लगवाया न कोई दवाई ली।

तब से मैं आश्रम की कपूरथला की सेवा समिति में जाने लगा। पूज्य बापूजी से दीक्षा भी ली। मैंने सोचा, 'जब इस पत्रिका ने मुझे नया जीवन दिया है तो मैं इसे औरों तक क्यों न पहुँचाऊँ ?' और मैं 'ऋषि प्रसाद' बाँटने की सेवा करने लगा। मेरे लिए जीवन-रक्षक बनी 'ऋषि प्रसाद' आज लाखों-करोड़ों लोगों के लिए भी सद्विचारों के माध्यम से जीवन-रक्षक एवं जीवन-प्रेरक बनी हुई है। हे 'ऋषि प्रसाद' ! कितना दूँ तुझे धन्यवाद !

– अमरजीत अरोरा, अमरजीत अरोरा एंड कंपनी, न्यू दाना मंडी, कपूरथला (पंजाब)। मो. : ९८१४०६७०५७.
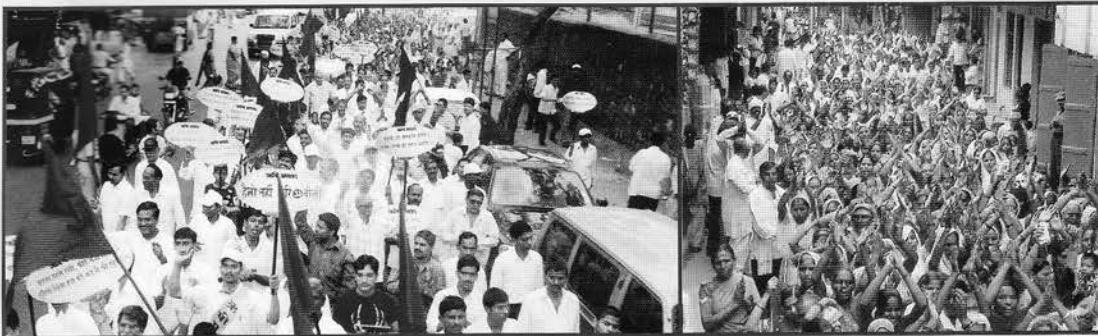
मुलुंड, मुंबई में भव्य हरिनाम संकीर्तन यात्रा व विशाल भंडारे का आयोजन हुआ तथा सिरसागंज, जि. फिरोजाबाद (उ.प्र.) में आयोजित संकीर्तन यात्रा में पूज्य बापूजी के अमृतोपम संदेशों को नाचते-गाते हुए जन-जन तक पहुँचाते पुण्यात्मा पुरुषार्थी।

संतरामपुर, जि. पंचमहाल (गुज.) तथा रायबरेली (उ.प्र.) में आयोजित संकीर्तन यात्राओं के दृश्य।

करोलबाग (दिल्ली) तथा कोटगढ़, जि. कंधमाल (उड़ीसा) में कम्बल-वितरण।

कोरबा (छ.ग.) के गरीबों में कम्बल व पट्टामुंडाई, जि. केन्द्रपाड़ा (उड़ीसा) के आदिवासियों में अन्न-वस्त्र तथा अन्य जीवनोपयोगी वस्तुओं का वितरण।

'भक्ति मिलती, शांति मिलती बापू के दरबार में...'

1 February 2009
RNP. NO. GAMC 1132/2009-11
WPP LIC NO. CPMG/GJ/41/09-11
RNI NO. 48873/91
DL(C)-01/1130/2009-11
WPP LIC NO. U (C) - 232/2009-11
MH/MR-NW-57/2009-11
MR/TECH/WPP-42/NW/09-11

Posting at PSO Ahmedabad between 25th of preceding month to 10th of current month. * Posting at ND. PSO on 5th & 6th of E.M. * Posting at MBI Patrika Channel on 9th & 10th of E.M.

इस वर्ष उत्तरायण पर्व के अवसर पर दिल्ली एवं अमदावाद दो स्थानों पर पूनम पर्व हुआ और दोनों स्थानों पर सत्संगियों की विशाल भीड़ ने सत्संग-मंडप को नन्हा बना दिया।

उत्तरायण शिविर में आयोजित 'ऋषि प्रसाद' तथा 'बाल संस्कार केन्द्र' के अखिल भारतीय सम्मेलनों के दृश्य। सम्मेलनों का विवरण पढ़ें पृष्ठ ३१ व ३२ पर।
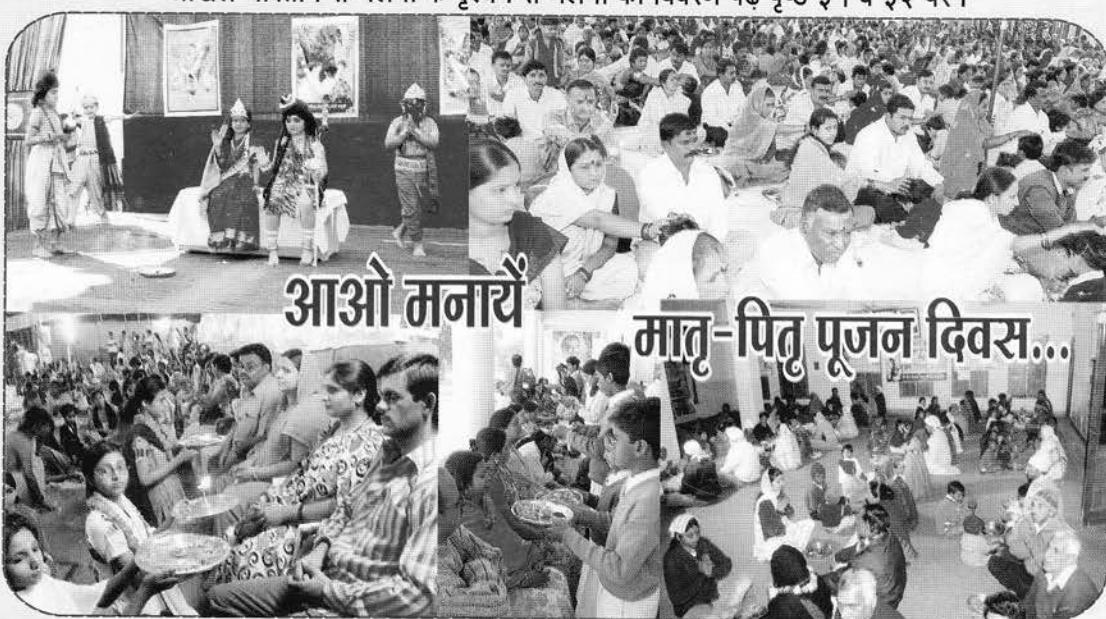
माता-पिता एवं संतानों के बीच सद्भाव एवं स्नेहवर्धन हेतु १४ फरवरी को 'मातृ-पितृ पूजन' कार्यक्रमों का आयोजन बाल संस्कार केन्द्रों, विद्यालयों एवं घर-घर में सामूहिक रूप से करें।